शोध दिशा

वर्ष 6 अंक 3-4 जुलाई-दिसंबर 2013 40 रुपए

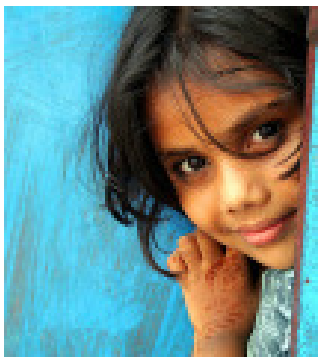

संपादकीय कार्यालय
हिंदी साहित्य निकेतन
16 साहित्य विहार, बिजनौर 246701 (उ॰प्र॰)
फ़ोन : 01342-263232, 07838090732
ई-मेल : giriraj3100@gmail.com
वैब साइट : www.hindisahityaniketan.com

क्षेत्रीय कार्यालय
दिल्ली एन॰सी॰आर॰
डॉ॰ अनुभूति भटनागर
सी-106, शिव कला अपार्टमेंट्स
बी 9/11, सैक्टर 62, नोएडा
मो॰ : 09928570700

गुड़गाँव कार्यालय
डॉ॰ मीना अग्रवाल
एफ़-403, पार्क व्यू सिटी-2
सोहना रोड, गुड़गाँव (हरियाणा)
फ़ोन : 0124-4076565, 07838090732

राजस्थान
राहुल भटनागर
डी-101 पर्ल ग्रीन एकड़, श्री गोपालनगर
सोमानी अस्पताल के पास, गोपालपुरा बाईपास
जयपुर (राज॰)
मो॰ : 08233805777

(सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।)

संपादक
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल

प्रबंध संपादक
डॉ॰ मीना अग्रवाल

संयुक्त संपादक
मनोज अबोध
सत्यराज

कला संपादक
गीतिका गोयल 09582845000
डॉ॰ अनुभूति 09928570700

उपसंपादक
डॉ॰ अशोक कुमार 09557746346

विधि परामर्शदाता
अनिलकुमार जैन, एडवोकेट

आर्थिक परामर्शदाता
ज्योतिकुमार अग्रवाल, सी॰ए॰

चित्रकार
डॉ॰ आर॰के॰ तोमर
देवेंद्र शर्मा
अतुलवर्धन

शुल्क
आजीवन शुल्क : एक हज़ार पाँच सौ रुपए
वार्षिक शुल्क : एक सौ पचास रुपए
एक प्रति : चालीस रुपए
विदेश में : पंद्रह यू॰एस॰डॉलर (वार्षिक)

प्रकाशित सामग्री से संपादकीय सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका से संबंधित सभी विवाद केवल बिजनौर स्थित न्यायालय के अधीन होंगे। शुल्क की राशि 'शोध दिशा' बिजनौर के नाम भेजें।

स्वत्वाधिकारी 'हिंदी साहित्य निकेतन' की ओर से स्वत्वाधिकारी, मुद्रक प्रकाशक डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल द्वारा श्री लक्ष्मी ऑफसैट प्रिंटर्स, निकट ज्योतिष भवन, बिजनौर 246701 से मुद्रित एवं 16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ॰प्र॰) से प्रकाशित। पंजीयन संख्या : UP HIN 2008/25034

संपादक : डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल

संरक्षक

रो॰ असित मित्तल, नोएडा
श्री अजय रस्तोगी, मेरठ
श्री निश्चल रस्तोगी, मेरठ
श्री अनिलकुमार गोयल, नोएडा
रो॰ आर॰के॰ जैन, बिजनौर
डॉ॰ धैर्य विश्नोई, बिजनौर
डॉ॰ प्रकाश, बिजनौर
रो॰ राजीव रस्तोगी, मुरादाबाद
रो॰ राकेश सिंहल, मुरादाबाद
श्री महेश अग्रवाल, मुरादाबाद
श्रीमती ताराप्रकाश, मुज़फ़्फ़रनगर
रो॰ परमकीर्तिसरन अग्रवाल, मु॰न॰
रो॰ देवेंद्रकुमार अग्रवाल, (काशी विश्वनाथ स्टील्स, काशीपुर)
श्री प्रमोदकुमार अग्रवाल, (नैनी पेपर्स, काशीपुर)
श्री अमितप्रकाश, मुज़फ़्फ़रनगर
रो॰ नीरज अग्रवाल, जयपुर
श्री सत्येंद्र गुप्ता, नजीबाबाद
श्री अशोक अग्रवाल, गुड़गाँव
डॉ॰ सुधारानी सिंह, मेरठ

आजीवन सदस्य

रो॰ आर॰ के॰ साबू, चंडीगढ़
रो॰ सुशील गुप्ता, नई दिल्ली
रो॰ एम॰एल॰ अग्रवाल, दिल्ली
डॉ॰ मनोजकुमार, दिल्ली
श्री प्रवीण शुक्ल, दिल्ली
डॉ॰ दीप गोयल, दिल्ली
श्री आशीष कंधवे, दिल्ली
श्री अविनाश वाचस्पति, दिल्ली
पावर फाइनेंस कारपोरेशन (इं) लि॰

उत्तर प्रदेश

रो॰ डॉ॰ के॰ सी॰ मित्तल, नोएडा
श्री सुभाष गोयल, नोएडा
श्री ओमप्रकाश यति, नोएडा
डॉ॰ कुँअर बेचैन, ग़ाज़ियाबाद
डॉ॰ अंजु भटनागर, ग़ाज़ियाबाद
डॉ॰ मिथिलेश रोहतगी, ग़ाज़ियाबाद
डॉ॰ मंजु शुक्ल, ग़ाज़ियाबाद
डॉ॰ मिथिलेश दीक्षित, शिकोहाबाद
डॉ॰ पल्लवी दीक्षित, शिकोहाबाद
रो॰ डॉ॰ एस॰के॰ राजू, हाथरस
श्री दिनेशचंद्र शर्मा, मोदीनगर
श्री एस॰सी॰ संगल, बुढ़ाना
डॉ॰ नीरू रस्तोगी, कानपुर
श्री विनोदकुमार गोयल, दादरी
श्री अलीहसन मकरैंडिया, दादरी
डॉ॰ प्रणव शर्मा, पीलीभीत
श्रीमती पिंकी चतुर्वेदी, वाराणसी
श्री अरविंदकुमार, जालौन
नेशनल थर्मल पावर कारपोरेशन
डॉ॰ राकेश शरद, आगरा
डॉ॰ राकेश सक्सेना, एटा
श्री अरविंदकुमार, मोहदा (हमीरपुर)
श्री गोपालसिंह, बेलवा (जौनपुर)
डॉ॰ रामसनेहीलाल शर्मा, फिरोजाबाद
श्री दिनेश रस्तौगी, शाहजहाँपुर
श्री भूदेव शर्मा, नोएडा
श्री इंद्रप्रसाद अकेला, मुरादनगर
प्राचार्य, डॉ॰ गोविंदप्रसाद, रानीदेवी पटेल महाविद्यालय कानपुर नगर

खुरजा (उ॰प्र॰)

श्रीमती उषारानी गुप्ता
रो॰ राकेश बंसल
रो॰ डॉ॰ दिनेशपाल सिंह
रो॰ प्रेमप्रकाश अरोड़ा
रो॰ सुनील गुप्ता आदर्श

जे॰पी॰ नगर

रो॰ अभय आनंद रस्तोगी, हसनपुर
रो॰ डॉ॰ विनोदकुमार अग्रवाल, हसनपुर
रो॰ डॉ॰ सरल राघव, अमरोहा
डॉ॰ बीना रुस्तगी, अमरोहा
रो॰ शिवकुमार गोयल, धनौरा
रोटरी क्लब, भरतियाग्राम

अफजलगढ़ (बिजनौर)

रो॰ रविशंकर अग्रवाल
रो॰ अतुलकुमार गुप्ता
रो॰ महेंद्रमानसिंह शेखावत
श्री वासुदेव सरीन
श्री हंसराज सरीन
श्री अमृतलाल शर्मा
श्री सुरेशकुमार

चाँदपुर (बिजनौर)

डॉ॰ मुनीशप्रकाश अग्रवाल
श्री सुरेंद्र मलिक
गुलाबसिंह हिंदू महाविद्यालय
डॉ॰ बलराजसिंह, बाष्टा (बिजनौर)
श्री विपिनकुमार पांडेय

धामपुर (बिजनौर)

डॉ॰ लालबहादुर रावल
श्री जे॰पी॰ शर्मा, शुगर मिल
डॉ॰ सरोज मार्कण्डेय
डॉ॰ शंकर क्षेम
श्री नरेंद्रकुमार गुप्त
श्रीमती सुषमा गौड़
डॉ॰ मिथिलेश माहेश्वरी
रो॰ शिवओम अग्रवाल
डॉ॰ वीरेंद्रकुमार शर्मा
डॉ॰ कृष्णकांत चंद्रा
डॉ॰ श्रीमती संहिता शर्मा
डॉ॰ पूनम चौहान
डॉ॰ भानु रघुवंशी
डॉ॰ ख़ालिदा तरन्नुम
श्री आर्यभूषण गर्ग
श्री संजय जैन
श्री निशिवेशसिंह एडवोकेट
श्री दीपेंद्रसिंह चौहान
मौ॰ सुलेमान, परवेज़ अनवर, शेरकोट
कुँ॰ निहालसिंह, दुर्गा पब्लिक स्कूल
प्राचार्य, आर॰एस॰एम॰ (पी॰जी॰)कालेज
प्राचार्या, एस॰बी॰डी॰ महिला कालेज
राधा इंटर कालेज, अल्हेपुर (धामपुर)
धामपुर पब्लिक कन्या इंटर कालेज

नगीना (बिजनौर)

श्री पंकजकुमार, पो॰ भोगली
श्री करनसिंह, पो॰ भोगली
श्री पंकजकुमार अग्रवाल
श्री मुनमुन अग्रवाल
डॉ॰ वारिस लतीफ
श्री ओमवीर सिंह

नजीबाबाद (बिजनौर)

श्री इंद्रदेव भारती
डॉ॰ रासुलता

बरेली (उ॰प्र॰)

रो॰ डॉ॰ आई॰एस॰ तोमर
रो॰ रविप्रकाश अग्रवाल
रो॰ डॉ॰ रामप्रकाश गोयल
डॉ॰ सविता उपाध्याय
डॉ॰ महाश्वेता चतुर्वेदी
रो॰ पी॰पी॰ सिंह
डॉ॰ अशोक उपाध्याय

रो॰ श्यामजी शर्मा
श्री विशाल अरोड़ा
डॉ॰ वाई॰एन॰ अग्रवाल
श्री राजेंद्र भारती
डॉ॰ देवेंद्राकुमारी झा

बिजनौर (उ॰प्र॰)

श्री राजकमल अग्रवाल
डॉ॰ बलजीत सिंह
रो॰ रमेश गोयल
रो॰ विज्ञानदेव अग्रवाल
श्रीमती शशि जैन
डॉ॰ मोनिका भटनागर
डॉ॰ ओमदत्त आर्य
श्री जोगेंद्रकुमार अरोरा
श्री चंद्रवीरसिंह गहलौत, एडवोकेट
रो॰ आर॰डी॰ शर्मा
डॉ॰ निकेता
डॉ॰ अजय जनमेजय
श्री पुनीत अग्रवाल
डॉ॰ निरंकारसिंह त्यागी
श्री अशोक निर्दोष
श्री वी॰पी॰ गुप्ता
रो॰ प्रदीप सेठी
रो॰ हरिशंकर गुप्ता
रो॰ सी॰पी॰ सिंह
डॉ॰ तिलकराम, वर्धमान कॉलेज
आर॰बी॰डी॰महिला महाविद्यालय
रो॰ डॉ॰ रजनीशचंद्र ऐरन, हल्दौर
श्री अरुण गोयल, किरतपुर
रो॰ डॉ॰ दीपशिखा लाहौटी, नगीना
रो॰ बी॰के॰ मालपानी, स्योहारा
डॉ॰ हेमलता देवी, गोहावर
नहटौर डिग्री कालेज, नहटौर
श्री विवेक गुप्ता, शादीपुर

मवाना (उ॰प्र॰)

रो॰ अनुराग दुबलिश
श्री अंबरीशकुमार गोयल
आर्य कन्या इंटर कालेज
ए॰एस॰ इंटर कालेज
लक्ष्मीदेवी आर्य कन्या डिग्री कालेज

मुज़फ़्फ़रनगर (उ॰प्र॰)

रो॰ शरद अग्रवाल
रो॰ वीरेंद्र अग्रवाल
रो॰ दिनेशमोहन
रो॰ डॉ॰ ईश्वर चंद्रा
रो॰ डॉ॰ अमरकांत
रो॰ अनिल सोबती
रो॰ डॉ॰ जे॰के॰ मित्तल
रो॰ सुधीरकुमार गर्ग
रो॰ प्रदीप गोयल
श्री गौरव प्रकाश
डॉ॰ बी॰के मिश्रा
रो॰ राकेश वर्मा
रो॰ संजीव गोयल
प्राचार्य, एस॰डी॰ कालेज ऑफ लॉ
प्रधानाचार्य, ग्रेन चेम्बर्स पब्लिक स्कूल
रो॰ संजय जैन, शामली
रो॰ डॉ॰ कुलदीप सक्सेना, शामली
रो॰ उमाशंकर गर्ग, शामली
रो॰ डॉ॰ सुनील माहेश्वरी, शामली
श्री अतुलकुमार अग्रवाल, खतौली

मुरादाबाद (उ॰प्र॰)

रो॰ सुधीर गुप्ता, एडवोकेट
रो॰ बी॰एस॰ माथुर
रो॰ ललितमोहन गुप्ता
रो॰ सुरेशचंद्र अग्रवाल
श्री शचींद्र भटनागर
रो॰ योगेंद्र अग्रवाल
रो॰ नीरज अग्रवाल
रो॰ के॰के॰ अग्रवाल
रो॰ श्रीमती सरिता लाल
रो॰ श्रीमती चित्रा अग्रवाल
डॉ॰ महेश 'दिवाकर'
रो॰ ए॰एन॰ पाठक
रो॰ चक्रेश लोहिया
रो॰ यशपाल गुप्ता
रो॰ सुधीर खन्ना
रो॰ रमित गर्ग
श्री विनोदकुमार
डॉ॰ रामानंद शर्मा
डॉ॰ पल्लव अग्रवाल
श्री राजेश्वरप्रसाद गहोई
श्री विश्वअवतार जैमिनी
श्रीमती कनकलता सरस
श्री योगेंद्रकुमार
श्री हरीश गर्ग, संभल
श्री वीरेंद्र गोयल, संभल
श्री नितिन गर्ग, संभल
रो॰ डॉ॰ राकेश चौधरी, चंदौसी

मेरठ (उ॰प्र॰)

रो॰ ओ॰पी॰सपरा
रो॰ विष्णुशरण भार्गव
रो॰ एम॰एस॰ जैन
रो॰ गिरीशमोहन गुप्ता
रो॰ डॉ॰ हरिप्रकाश मित्तल
रो॰ प्रणय गुप्ता
डॉ॰ आर॰के॰ तोमर
रो॰ संजय गुप्ता
श्री किशनस्वरूप
रो॰ नरेश जैन
रो॰ सागर अग्रवाल
डॉ॰ अनिलकुमारी
रो॰ प्रदीप सिंहल
श्री शिवानंद सिंह 'सहयोगी'
रो॰ नवल शाह
डॉ॰ रामगोपाल भारतीय
श्रीमती बीना अग्रवाल
श्रीमती मृदुला गोयल
रो॰ मुकुल गर्ग
श्री सियानंद सिंह त्यागी
श्री राकेश चक्र
रो॰ सी॰पी॰ रस्तौगी
डॉ॰ ज्ञानेदत्त हरित

रामपुर (उ॰प्र॰)

श्री शांतनु अग्रवाल
श्री नरेशकुमार सिंघल
डॉ॰ मीना महे

लखनऊ (उ॰प्र॰)

श्री महेशचंद्र द्विवेदी, आई॰पी॰एस॰
श्री दामोदरदत्त दीक्षित
डॉ॰ किरण पांडेय
श्री अनुपम मित्तल
श्रीमती रेणुका वर्मा
श्रीमती उषा गुप्ता
श्री अमृत खरे
श्री विनायक भूषण

सहारनपुर (उ॰प्र॰)

डॉ॰ विपिनकुमार गिरि
श्री श्रीपाल जैन ठेकेदार
श्री पूर्णसिंह सैनी, बेहट
श्री विनोद 'भृंग'
एम॰एल॰जे॰खेमका गर्ल्स कालेज

उत्तराखंड

डॉ॰ आशा रावत, देहरादून

डॉ॰ राखी उपाध्याय, देहरादून
श्री अमीन अंसारी, जसपुर
श्री विपिनकुमार बक्शी, कोटद्वार
डॉ॰ अर्चना वालिया, कोटद्वार
धनौरी डिग्री कालेज, धनौरी
नेशनल इंटर कालेज, धनौरी

रुड़की

डॉ॰ अनिल शर्मा
श्री प्रेमचंद गुप्ता
श्री अविनाशकुमार शर्मा
श्री वासुदेव पंत
श्री मयंक गुप्ता
श्री अमरीष शर्मा
श्री उमेश कोहली
श्री जे॰पी॰ शर्मा
श्री मनमोहन शर्मा
श्री सुनील साहनी
श्री अशोक शर्मा 'आर्य'
श्री मेनपालसिंह
श्री संजय प्रजापति
श्री ओमदत्त शर्मा
श्री अरविंद शर्मा
श्री राजेश सिंहल
श्री ब्रिजेश गुप्ता
श्री संजीव राणा
श्री ऋषिपाल शर्मा
श्री राजपाल सिंह
बी॰एस॰एम॰इंटर कालेज,
आनंदस्वरूप आर्य सरस्वती विद्या मंदिर
योगी मंगलनाथ सरस्वती विद्या मंदिर
शिवालिक पब्लिक स्कूल, डंडेरा

काशीपुर

श्री समरपाल सिंह
श्री प्रमोदकुमार अग्रवाल
रो॰ डॉ॰ वी॰एम॰ गोयल
रो॰ डॉ॰ एस॰पी॰ गुप्ता
रो॰ डॉ॰ डी॰के॰ अग्रवाल
रो॰ डॉ॰ एन॰के॰ अग्रवाल
रो॰ डॉ॰ रविनंदन सिंघल
रो॰ विजयकुमार जिंदल
रो॰ जितेंद्रकुमार
रो॰ प्रदीप माहेश्वरी
रो॰ रवींद्रमोहन सेठ
श्री प्रमोदसिंह तोमर

आंध्र, कर्नाटक, केरल, मिज़ोरम

श्री अनंत काबरा, हैदराबाद
श्री श्याम गोयनका, बैंगलौर
डॉ॰ दीपा के॰, बैंगलोर (कर्नाटक)
डॉ॰ एन॰ चंद्रशेखरन नायर, केरल
डॉ॰ बी॰ आर॰ राल्टे, आइजॉल

तमिलनाडु

डॉ॰ बी॰ जयलक्ष्मी, चेन्नई
डॉ॰ पी॰आर॰ वासुदेवन शेष, चेन्नई
श्री एन॰ गुरुमूर्ति, चेन्नई
सुश्री प्रतिभा मलिक, चेन्नई
सुश्री अपराजिता शुभ्रा, चेन्नई
श्री योगेशचंद्र पांडेय, चेन्नई
श्री महेंद्रकुमार सुमन, चेन्नई
श्री संजय ढाकर, चेन्नई
श्री प्रदीप साबू, चेन्नई
सुश्री स्वर्णज्योति, पांडिचेरी

पंजाब

रो॰ विजय गुप्ता, राजपुरा
कर्नल तिलकराज, जालंधर
श्री सागर पंडित, अमृतसर

उड़ीसा

श्री श्यामलाल सिंहल, राउरकेला

मध्य प्रदेश, बिहार, छत्तीसगढ़

रो॰ रविप्रकाश लंगर, उज्जैन
डॉ॰ हरीशकुमार सिंह, उज्जैन
डॉ॰ अशोक भाटी, उज्जैन
श्री माणिक वर्मा, भोपाल
श्री प्रदीप चौबे, ग्वालियर
श्री उमाशंकर मनमौजी, भोपाल
श्री जगदीश जोशीला
श्री विनोदशंकर शुक्ल, रायपुर
श्री रामेश्वर वैष्णव
श्री गजेंद्र तिवारी, बागबाहरा
श्री धीरेंद्रमोहन मिश्र, लक्खीसराय

महाराष्ट्र, गुजरात

रो॰ सज्जन गोयनका, मुंबई
श्री जावेद नदीम, मुंबई
रो॰ डॉ॰ माधव बोराटे, पुणे
श्रीमती रिज़वाना कश्यप, पुणे
रो॰ सुरेश राठौड़, मुंबई
डॉ॰ अश्विनीकुमार 'विष्णु', अमरावती
डॉ॰ शैलजा सुरेश माहेश्वरी, अमलनेर
श्री मधुप पांडेय, नागपुर
श्री सुभाष काबरा
श्री अरुणा अग्रवाल, पुणे
श्री सागर खादीवाला, नागपुर
डॉ॰ मिर्ज़ा एच॰ एम॰, सोलापूर
श्री वनराज आर्ट्स, कॉमर्स कालेज,
धरमपुर (बलसाड)
श्री मोरारजी देसाई आर्ट्स एंड कॉमर्स
कालेज, वीरपुर (तापी)

राजस्थान

रो॰ डॉ॰ अशोक गुप्ता, जयपुर
रो॰ अजय काला, जयपुर
श्री कमल कोठारी, जयपुर
रो॰ विवेक काला, जयपुर
श्री आर॰सी॰ अग्रवाल, जयपुर
श्री राजीव सोगानी, जयपुर
श्री सुरेश सबलावत, जयपुर
श्री कमल टोंगिया, जयपुर
श्री मुकेश गुप्ता, जयपुर
श्री विनोद गुप्ता, जयपुर
श्री गिरधारी शर्मा, जयपुर
रो॰ एस॰के॰ पोद्दार, जयपुर
रो॰ राजेंद्र सांघी, जयपुर
रो॰ आर॰पी॰ गुप्ता, जयपुर
श्री जयपुर चेंबर ऑफ़ कॉमर्स एंड इंड॰
डॉ॰ शंभुनाथ तिवारी, भीलवाड़ा
डॉ॰ दयाराम मैठानी, भीलवाड़ा
श्री मुरलीमनोहर बासोतिया, नवलगढ़

हरियाणा

श्री विकास, तहसील महम, रोहतक
डॉ॰ स्नेहलता, रोहतक
डॉ॰ सुदेशकुमारी, जींद
श्री हरिदर्शन, सोनीपत
डॉ॰ प्रवीनबाला, जुलाना मंडी
श्रीमती अनिलकुमारी, घिलौड़ कलाँ
डॉ॰ प्रवीणकुमार वर्मा, फरीदाबाद
श्रीमती रेखारानी, फरीदाबाद
श्रीमती सविताकुमारी, सोनीपत
श्रीमती सुमनलता, रोहतक
श्री सुरेशकुमार, भिवानी
डॉ॰ सविता डागर, चरखी दादरी
छोटूराम किसान कालेज, जींद
प्राचार्य, ए॰पी॰जे॰ सरस्वती पी॰जी॰ कालेज,
चरखी दादरी
विनोदकुमार कौशिक, चरखी दादरी
डी॰सी॰ मॉडल सीनियर सेकेंडरी स्कूल
फरीदाबाद
श्रीमती विधु गुप्ता, गुड़गाँव

काका को शत-शत नमन...

काका हाथरसी के जन्मदिवस पर
18 सितंबर 1906-18 सितंबर 1995

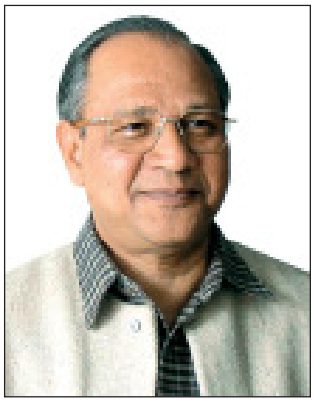

सितंबर का महीना आता है तो अपने प्यारे काका हाथरसी जी की याद स्वाभाविक रूप से आती है। वे सितंबर में ही हमारे बीच में आए और सितंबर में ही हमसे विदा ले गए। मैं उनकी अंतिम यात्रा का गवाह हूँ, जब लगभग पूरा जनपद अलीगढ़ उनके अंतिम दर्शनों के लिए हाथरस की सड़कों पर खड़ा होकर उन्हें अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित कर रहा था। बिना किसी सरकारी घोषणा के तीन दिन तक पूरे जनपद ने जैसे सब काम छोड़ दिया।

क्या आप कभी उस स्थिति की कल्पना कर सकते हैं कि अंतिम स्थल पर पूरे मेले जैसा दृश्य था। एक ओर काका का शरीर आग में विलीन हो रहा था तो दूसरे छोर पर दूर-दूर से आए हुए हास्यकवि अपनी हास्य-कविताओं से उपस्थित जनसमुदाय को हँसा रहे थे। यह सब अप्रत्याशित लगता है, किंतु यह सब काका की पूर्व घोषित इच्छा का पालन था। वे सारी ज़िंदगी लोगों को हँसाते रहे तो अंतिम क्षणों में भी चाहते थे कि उन्हें हँसकर ही विदाई दी जाए; और ऐसी ही अद्‌भत विदाई उन्हें दी गई।

ऐसे अद्‌भुत और जीवंतप्राण काका का काव्य भी उतना ही जीवंत और अद्‌भुत है। हम सब जानते हैं कि काका ने अपने काव्य में सामाजिक, राजनीतिक या जीवन की प्रत्येक प्रकार की समस्याओं, दशाओं, परिस्थितियों, चरित्रों और व्यवहारों पर करारा व्यंग्य-प्रहार किया है। उनकी इस व्यंग्यपूर्ण हँसी का उद्‌देश्य था, समाज की गंदगी और असंगतियों को दूर करना और वह इस कार्य में पूर्ण रूप से सफल भी रहे। समाज की विषमताओं और कुरीतियों पर उन्होंने गहरी चोट की। उनकी कविताओं में इतनी अधिक मारक क्षमता है कि उनका लक्ष्य ख़ाली नहीं जाता, निशाना चूकता नहीं।

काका की क़लम का कमाल कार से लेकर बेकार तक, भ्रष्टाचार से चोर बाज़ार तक, परिवार से पत्रकार तक, अख़बार से गँवार तक, रिश्वत से दुर्गति तक, फ़ैशन से राशन तक, परिवार से नियोजन तक, कमाई से मँहगाई और मंत्री से संत्री तक देखने को मिलता है। मतलब यह है कि काका ने हर समस्या में हास्य खोजा है।

काका ने भ्रष्टाचारी समाज का सही चित्र खींचा। न्यायालयों की स्थिति बड़ी भयंकर है। वह न्यायालय है या भ्रष्टालय, इसका भेद आसानी से नहीं किया जा सकता, यहाँ न्याय तो बाद में मिलता है, परंतु वहाँ के कारिंदों की 'व्यवस्था' से कोई बच जाए, यह असंभव है।

आज सब जगह रिश्वत का बोलबाला है। हर काम रिश्वत की सहायता से संपन्न हो सकता है। कभी रिश्वत लेने वाला पकड़ा भी जाए तो भी उसका बाल-बाँका नहीं हो सकता। काका ने इस स्थिति पर करारा व्यंग्य किया है–

कूटनीति मंथन करी, प्राप्त हुआ यह ज्ञान,
लोहे से लोहा कटे, यह सिद्धांत प्रमान।
यह सिद्धांत प्रमान, ज़हर से ज़हर मारिए,
चुभ जाए काँटा, काँटे से ही निकालिए।
कहँ काका कवि, काँप रहा क्यों रिश्वत लेकर,
रिश्वत पकड़ी जाय, छूट जा रिश्वत देकर।

काका की दृष्टि का लेंस इतना विशाल और पावरफुल है कि उसमें सब-कुछ आ जाता है। उनकी हास्य-व्यंग्य की अनेक कविताएँ समाज के अँधेरे कोने में जनता को प्रकाश प्रदान कर रही हैं। अहिंदीभाषी क्षेत्रों में भी हिंदी को लोकप्रिय बनाने में उन्होंने पर्याप्त सहयोग दिया है। जनभाषा में लिखी गई उनकी कविताएँ पढ़-अपढ़, बाबू-लाला, उच्च तथा निम्नवर्ग सभी के लिए मनोरंजन का विषय हैं। वास्तव में भारतेंदु से चलने वाली हास्य-व्यंग्य की धारा का पूर्ण विकसित रूप काका में आकर साकार हुआ है। अपने प्यारे काका को 'शोध-दिशा' परिवार की ओर से शत-शत नमन।

अनुक्रम

कहानियाँ

आख़िरी चिट्ठी / **डॉ॰ रामदरश मिश्र** 7
महानगर की मैथिली / **सुधा अरोरा** 17
और नैना मर गई / **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल** 26
ईस्ट इंडिया कंपनी / **पंकज सुबीर** 29
टॉरनेडो / **डॉ॰ सुधा ओम ढींगरा** 34
काला सागर / **तेजेंद्र शर्मा** 42
मेरी माँ / **डॉ॰ मीना अग्रवाल** 49
विस्थापन का दर्द / **राजेन्द्र मिश्र** 52

कविताएँ

चुनाव-चातुर्य / **काका हाथरसी** 6
जाड़े की धूप / **विनोद भृंग** 33
ज़िंदगी / **दिनाक्षी अरोड़ा 'सहर'** 47
मिट्टी / **मीनाक्षी एम॰ सिंह** 47
बिटिया, रिश्तों की डोरियाँ / **गीतिका गोयल** 48

पुस्तक समीक्षा

रौशनी का सफ़र 56

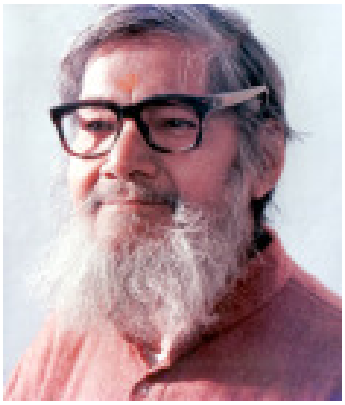

चुनाव-चातुर्य

दर्पण रखकर सामने अपना रूप निहार
होकर खड़े चुनाव में, करो देश-उद्धार
करो देश-उद्धार, जोड़ गुंडों से नाता
जिनकी सूरत देख काँप जाए मतदाता
कहँ 'काका', जो निंदा करते नहीं अघाएँ
वही विरोधी तुम्हें वोट देने को आएँ

प्रोपेगेंडा रात-दिन कीजे धूआँधार
जीत जाए तो पार है, हार जाए तो पार
हार जाए तो पार, नाम का लाभ उठाओ
जीत हुई तो वैभव और संपदा पाओ
कहँ 'काका' कवि, छोड़ मोर्चे को सर करके
चाहे बर्तन-भाँडे तक बिक जाएँ घर के

कर्जा भी लेना पड़े, ले लो आँखें मीच
जीत जाए तो चौगुना एक वर्ष में खींच
एकवर्ष में खींच, महाजन सभी डरेंगे
देख आपका रौब, तकाजा नहीं करेंगे
कहँ 'काका' कवि, कर्ज छोड़ होंगे आभारी
दिलवा दो उनको कोई ठेका सरकारी

सीट प्राप्त हो जाए तो मिटे सकल संताप
अक्कल दिन-दूनी बढ़े, छिपें पुराने पाप
छिपें पुराने पाप, बनाते रहिए भत्ता
आज लखनऊ, कल दिल्ली, परसों कलकत्ता
कहँ 'काका', यह कला सीख बन जाओ नेता
नेता को भगवान फाड़कर छप्पर देता

–काका हाथरसी

कहानी

आख़िरी चिट्ठी

डॉ॰ रामदरश मिश्र

प्रभा की चिट्ठी मिली। यह कोई नई बात नहीं थी। वह लिखती ही रहती थी, लेकिन हर बार चिट्ठी पाकर थोड़ी देर के लिए उसे मेज़ पर रख देता था। उसे खोलने में एक अजीब दहशत-सी होती थी। पता नहीं, इसमें कौनसी नई अप्रिय सूचना हो। वैसे भी उसकी चिट्ठियाँ उसकी जीवन-यातना की परतें खोलती जाती थीं। कोई नई घटनात्मक सूचना न भी हो, तो क्या भीतर स्थित दर्द के खुलते हुए आयाम कम भयावह थे? हर बार चिट्ठी काफ़ी देर तक कटे हुए पंख की तरह फड़फड़ाती थी, फिर मैं आहिस्ता-आहिस्ता उसे यों खोलता था जैसे उसमें कोई भयानक कीड़ा बंद होगा और खुलते ही कूदकर मेरे चेहरे पर डंक मार देगा। इस बार भी यही हुआ। लेकिन इस बार गज़ब ही हो गया। उसे स्थगित करने के क्रम में मैंने उसे चिट्ठियों के ढेर में डाल दिया और दूसरे कामों में यों खोया कि उसकी याद ही उतर गई।

सप्ताह भर बाद पिताजी का पत्र आया। उसे पढ़कर मैं ऐसे उछला जैसे सचमुच आज चिट्ठी से एक कीड़ा उड़कर मेरे चेहरे पर डंक मारने के लिए लपका हो। 'प्रभा', मैं भीतर-भीतर ही एक बार चिल्लाया, फिर निढाल होकर कुर्सी पर पसर गया। एकाएक मुझे प्रभा की आख़िरी चिट्ठी का ध्यान आया। अरे, उसे तो मैं भूल ही गया था। आख़िर मेरी इस भूल का कारण क्या है? उपेक्षा? प्रभा की उपेक्षा? नहीं-नहीं, काम की व्यस्तता। नहीं-नहीं, सही बात क्यों नहीं कहते! क्या चिट्ठी की याद भूलने के पीछे उपेक्षा-भाव नहीं रहा? क्या तुमने यह नहीं सोचा कि आख़िर एक ही बात का रोना रोज़-रोज़ कौन सुने? लोगों ने प्रभा की उपेक्षा की तो तुम्हें बुरा लगा, परंतु तुमने तो उसकी चिट्ठी की ही उपेक्षा कर दी। उफ़, ऐसा नहीं, नहीं-नहीं।

मैं बहुत देर तक हतप्रभ बैठा रहा, धीरे-धीरे उठा, चिट्ठियों के ढेर में से पिछली चिट्ठी खोजकर निकाली, कुछ देर तक उसे देखता रहा जैसे उसे खोलने में डर लग रहा था। फिर झटके से लिफ़ाफ़ा फाड़ा और चिट्ठी पढ़ गया।

प्रभा से सीधा मेरा कोई संबंध नहीं था, लेकिन फिर भी न जाने कितना आत्मीय संबंध था। वह मेरे ननिहाल की थी, मेरे मामा के घर से उसके पिता का घर सटा हुआ था। ननिहाल के रिश्ते से वह मेरी बहन लगती थी। वह मुझसे चार-पाँच साल छोटी थी। प्रभा के पिता और मेरे पिता दोनों ही बनारस में पोस्टेड थे। हमारे मकान की बगल में ही प्रभा का मकान था। हम दोनों साथ खेलते थे, झगड़ते थे, प्यार करते थे। प्रभा से बड़े तीन भाई थे। अंतिम भाई और प्रभा की अवस्था में काफ़ी अंतर था। शायद प्रभा से पहले कई संतानें मर गई हों, शायद यों ही बहुत दिन बाद प्रभा का जन्म हो गया हो। उसके दो बड़े भाई अपने परिवार लेकर अन्य शहरों में रहते थे, केवल अंतिम लड़का साथ रहता था। उसने वकालत शुरू की थी। प्रभा के पिता एक बहुत ईमानदार और कर्तव्यपरायण पुलिस ऑफ़िसर थे। बहुत हँसमुख थे। उनकी आँखों को देखकर बड़ी आश्वस्ति मिलती थी। उनकी बड़ी-बड़ी मूँछों से रुआब नहीं, एक देहाती भोलापन बरसता था। वे प्रभा को बहुत प्यार करते थे। मामीजी (प्रभा की माँ) भी बहुत प्यारी औरत थी—सीधी-सादी,

कम पढ़ी-लिखी लेकिन मानवीय ममता से भरपूर।

बहुत अच्छे दिन बीत रहे थे। लेकिन एक दिन सुबह-सुबह प्रभा के घर में कुहराम मच गया। हम सभी दौड़े आए पुलिस का एक सिपाही जीप लिए खड़ा था और मामीजी अपना सिर पीट-पीटकर रो रही थीं। उनकी चूड़ियाँ टूट-फूटकर बिखर गई थीं, कलाई लहूलुहान हो गई थी। प्रभा माँ का चीख़ना सुनकर बेतहाशा चीख़ रही थी। वकील साहब स्तब्ध-से खड़े थे। मालूम हुआ कि मामा जी आज रात को शहर से कुछ दूर डाकुओं के एक गिरोह का मुक़ाबला करने गए थे। कई डाकुओं को मारकर आख़िर में एक डाकू की गोली से आहत हो गए और वहीं प्राण छोड़ दिए।

'माँ, धीरज रखो और जीप पर बैठो।' वकील साहब ने कहा। मामी गिरती-पड़ती जीप पर बैठीं, पिताजी भी साथ हो लिए। माँ ने प्रभा को पकड़ लिया और मैं प्रभा के साथ बातें करने लगा।

पिताजी ने वहाँ से लौटने पर बताया कि मामाजी का ख़ून चारों और बिखरा हुआ था। मामीजी आकर वहाँ भहरा पड़ीं और उनका मुँह देख-देखकर चीख़ने लगीं, 'जाओ, तुम सब लोग जाओ। मुझे इनसे बातें करने दो। घेरे क्या हुए हो?'

बहुत करुण दृश्य था। सब लोग थोड़ी दूर हट गए। मामी वहाँ लोटती- पोटती रहीं। उनका मुख देख-देखकर जाने क्या-क्या कहती रहीं!

कुछ महीने बाद मामी को वह सरकारी मकान ख़ाली करना पड़ गया। वकील साहब ने कहीं और मकान ले लिया। अब मेरा प्रभा से मिलना लगभग छूट ही गया। पिताजी कभी-कभार वहाँ जाकर मिल आते थे और माँ को सारा हाल-चाल बताते थे। एक दिन माँ से कह रहे थे कि वकील साहब की पत्नी माँ-बेटी दोनों को डाँटती रहती है और कहती है कि आख़िर ये तीनों भाइयों की माँ-बहन हैं, हमीं क्यों इनका बोझ उठाएँ?' वकील साहब ने मौन भाव से इसे स्वीकार कर लिया है।

'हाय, बेचारियों पर क्या बीतती होगी! जब तक मरद था, तब तक वकील-वकीलानी पाँव धोकर पीते थे। मरद का साया उठते ही यह हाल हो गया। नाते-रिश्ते कितने झूठे पड़ गए हैं!' माँ ने कहा।

'हाँ-हाँ!' पिताजी गंभीरता से बोले।

'अब क्या होगा बेचारी का? जिसके तीन-तीन जवान बेटे हों और तीनों अच्छा कमाते-धमाते हों, वह अनाथ की तरह घूमे! हे राम, यह तुम्हारा कौनसा न्याय है?' माँ दुखी होकर बोले जा रही थीं।

'यह राम का न्याय कहाँ है, ये न्याय-अन्याय तो आदमी ने ख़ुद बना लिए हैं। बुज़ुर्गों के प्रति यह उपेक्षा-भाव पहले कहाँ था? अब देखो, कमाई-धमाई में डूबे हुए लड़के माँ-बाप के बेकार होते ही उन्हें बोझ समझने लगते हैं। यह राम का न्याय नहीं है; नई शिक्षा, नए रहन-सहन और नई व्यापारिक मनोवृत्ति का न्याय है।' पिताजी ने कहा।

'हे राम, बेचारी कैसे दिन काटेगी!' माँ अपनी ही धुन में थीं।

'देवी, यही सबका हाल होना है! ज़माने का रिवाज ही कुछ ऐसा हो गया है।' कहकर पिताजी ने कनखियों से मेरी ओर देखा था।

माँ ने आकुल होकर मुझसे पूछा था, 'क्यों रे विनोद, तू भी हम लोगों के साथ ऐसा ही बर्ताव करेगा?'

'नहीं, माँ!' कहकर मैं माँ की गोदी में टूट पड़ा था। माँ मेरा माथा सहलाने लगी थीं और पिता जी हलके-हलके मुस्करा रहे थे।

और एक दिन पिताजी का तबादला हो गया। हम दूसरे शहर में आ गए। अब मैं कॉलेज में पढ़ने लगा था। पिताजी के पास मामीजी की चिट्ठियाँ आती थीं। पिताजी माँ से बात करते, तो मुझे भी उनका हाल मालूम हो जाता और जो कुछ मुझे मालूम हुआ, वह यह था कि तीनों भाइयों ने आपस में सलाह करके यह निर्णय लिया है कि माँ और बहन बारी-बारी से तीनों भाइयों के पास साल-साल-भर रहेंगी।

'यह क्या हुआ? माँ नहीं हुई जैसे कोई सामान हो गई! धिक्कार है ऐसे बेटों को! अरे, डूब मरो कमबख़्तो, चुल्लू-भर पानी में! इतने बड़े-बड़े ओहदे पर काम करने वाले बेटे और सबके सब कमीने, स्वार्थी। किसी के पास इतना बड़ा कलेजा नहीं है कि वह छाती ठोककर कह सके—माँ मेरे पास रहेगी। वह मेरी माँ है, कोई चावल-दाल का बोरा नहीं।' माँ ने उत्तेजित होकर कहा था। पिताजी फिर उसी तरह मुस्कुरा रहे थे।

तब मैं बी॰ए॰ फ़ाइनल में था। एक दिन प्रभा की चिट्ठी आई और उस चिट्ठी से ही मालूम हुआ है कि वह मैट्रिक का इम्तहान दे रही है। ओह, इतनी बड़ी हो गई प्रभा?

और जब उसकी चिट्ठी पढ़कर समाप्त की तो मैं एकदम भारी हो आया। भारी हो आया प्रभा की मैच्युरिटी से भी और उसकी तकलीफ़ से भी। उनके लेखन में कितनी प्रौढ़ता है-भाषा में भी और सोच में भी। पत्र में आद्योपांत एक दार्शनिक कवि बोल रहा है, जो किताबों से नहीं, अपनी ज़िंदगी से अपना सत्य खींच रहा है। पत्र मेरे भीतर व्याप्त हो गया। मैं सचमुच ही बहुत शर्मिंदा

हुआ। यह नहीं कि प्रभा को मैं भूल गया था, मैं उसे प्राय: याद करता था और पिताजी और माताजी के संवादों के जरिए माँ-बेटी के बारे में सुन-सुनकर दुखी होता था। किंतु मैंने अपनी ओर से प्रभा को चिट्ठी क्यों नहीं लिखी? क्यों कभी उसके शहर जाकर उससे मिलने का ख़याल नहीं आया? शायद.....शायद....छोड़िए, सफ़ाई तो कुछ-न-कुछ दी ही जा सकती है, जो सही भी हो सकती है किंतु क्या कारणों को पार नहीं किया जा सकता? क्या कारणों से बँधा रह जाना ही पर्याप्त होता है? अब मैं क्या कह सकता हूँ?

ख़ैर, मैंने चिट्ठी लिखी और चिट्ठियों का आना-जाना होने लगा। और प्रभा की चिट्ठियों में उसकी भावुकता, उसका यातना-बोध, संबंधों का व्यर्थता-बोध गहराता गया। वह धीरे-धीरे सत्य की अनजानी गहराइयों में उतरती गई। मैंने उसे कई बार समझाने की कोशिश की कि इस उम्र में इतना सूफ़ियाना अंदाज़, इतनी आत्मोन्मुखता ठीक नहीं है, किंतु वह हमेशा उत्तर देती रही कि मैं और कुछ नहीं, अपने जीवन का सत्य कह रही हूँ, इस पर मैं वश नहीं पा रही हूँ। ये मेरे भीतर उतरकर मेरी लेखनी से फूट पड़ते हैं। मैं कविताएँ भी लिखने लगी हूँ। अभी नहीं, फिर कभी भेजूँगी।

मेरा एम॰ए॰ हो गया और प्रभा का इंटर। प्रभा की चिट्ठी से ज्ञात हुआ कि तीनों भाइयों की एक-एक बारी पूरी हो गई। अब बड़े भइया उन्हें अपने साथ नहीं रखना चाहते और वे नहीं रख रहे हैं, इसलिए बाक़ी दोनों भाइयों को भी न रखने का बहाना मिल गया है, किंतु सच बात तो यह है भइया कि हम लोग खुद उनके साथ नहीं रहना चाहते। तीनों भाइयों के यहाँ बारी-बारी से उपेक्षा और अपमान का जो नरक हमने भोगा है, उसके बाद फिर उसी नरक में जाने की इच्छा नहीं होती। लेकिन माँ है न, वह सोचती है कि मैं यदि इन लड़कों के साथ नहीं रही तो दुनिया मेरे लड़कों को बदनाम करेगी, उन्हें नालायक कहेगी। और कुछ भी हो, जिस माँ के साथ जवान बेटी हो, वह उसकी सुरक्षा के बारे में भी तो सोचती ही होगी, यद्यपि मेरी क्या सुरक्षा इन परिवारों में हो रही है, मैं खुद नहीं जान पाती। अपमान से मन टूटता है, काम से तन टूटता है। मैं पढ़ना चाहती हूँ मगर किसी को मुझे पढ़ाने में रस नहीं। वह तो मैं माँ के पैसों से किताबें ख़रीदकर पढ़ लेती हूँ और इम्तहान की फ़ीस भरकर प्राइवेट परीक्षा दे देती हूँ। भगवान की दया है कि अच्छे नंबरों से पास हो जाती हूँ जब कि इन भाइयों के बच्चे ट्यूशन लगाए जाने पर भी गिरते-पड़ते पास होते हैं। इस बात से भाभियों के कलेजे जल जाते हैं, भाई लोग भी खुश नहीं होते। तरह-तरह की बातें हैं, तरह-तरह की वजहें हैं अपमानित और ताड़ित होने के लिए भइया.... ओह, अब तो तुम्हें भइया लिखते हुए हाथ काँप जाते हैं, क्योंकि यह शब्द अब मेरे लिए बहुत वीभत्स और कुरूप हो गया है। लगता है, तुम्हें पत्र लिखते हुए यह शब्द अपना अर्थ पा लेता है। अब माँ मुझे लेकर फिर बनारस के अपने परिचित मोहल्ले में आ गई हैं। माँ के पास न जाने पैसे हैं कि नहीं, हैं तो कितने हैं? वह मुझे कुछ आभास नहीं देती। बहरहाल, मैं चाहती हूँ कि कोई छोटी-मोटी नौकरी कर लूँ। कभी आओ न। अब तो मैं तुम्हें शायद पहचान भी न पाऊँ। कितना समय गुज़र गया! माँ आजकल बहुत चिंतित और बीमार रहने लगी हैं।

हाँ, कितना समय गुज़र गया, लेकिन बचपन की वे स्मृतियाँ कितनी ताज़ा हैं। कितनी शक्ति है, कितना विश्वास है, प्रभा के मन में उन क्षणों के संबंधों को लेकर।

एक दिन फिर एक चिट्ठी आई, 'विनोद भइया, माँ मर गईं। मैं तो एकदम बेसहारा हो गई। चारों ओर जलता सुनसान ही दिखाई पड़ता है।'

पिताजी प्रभा की माँ के देहांत का समाचार सुनकर बहुत परेशान हो गए। भरी आवाज़ में बोले, 'अब क्या होगा इस लड़की का?' माँ को तो जैसे काठ मार गया।

पिताजी बनारस जाने की तैयारी करने लगे तो मैंने कहा, 'मैं भी चलूँगा।'

लेकिन पिताजी ने हतोत्साहित कर दिया। कहीं भीतर-भीतर मुझे लग रहा था कि प्रभा को इस ग़म के माहौल में नहीं देखना चाहिए। उसकी चिट्ठियाँ तो यों ही भारी बना देती हैं। यह परिस्थिति तो मुझे पागल ही बना देगी।

पिताजी लौटकर आए तो हम लोग उनके पास घिर आए। हम सभी चुप थे। 'हे भगवान्!' पिताजी ने उसाँस भरी, 'लड़की अनाथ हो गई। इस तरह गुमसुम हो गई थी कि देखकर डर लगता था। जानती हो, एक अजीब बात हो गई। प्रभा की माँ मरी तो उनके पास ख़ून से सनी मिट्टी का एक छोटा-सा ढेला मिला। उसके साथ एक चिट्ठी भी कि मेरे पतिदेव का यह ख़ून मेरी लाश जलाते समय चिता पर रख दिया जाए। लगता है, बेचारी उस ढेले को आत्मा की तरह छिपाए अपने साथ ढो रही थी।'

'प्रभा का क्या हुआ?' मैंने पूछा।

'हुआ क्या, बड़े भाई ले गए हैं और यह तय हुआ कि यह लोग मिलकर उसकी कहीं शादी कर दें और जो ख़र्चा आए उसे बाँट लें।'

मुझे लगा कि जिस नरक से वह भागकर आई थी, उसी में फिर ढकेल दी गई है। पहले तो माँ का सहारा भी था, अब किसका सहारा होगा संबंधों के उस बियाबान जंगल में!

काफ़ी दिनों से प्रभा का कोई पत्र नहीं आया। मैंने उसके बड़े भाई के पते पर दो-तीन पत्र लिखे, किंतु उत्तर किसी का नहीं आया; पता नहीं क्यों? पता नहीं उसे मेरे पत्र मिले भी या नहीं, पता नहीं वह पत्र लिखने की मानसिकता में है भी कि नहीं। इस असमंजस ने मुझे बहुत परेशान कर दिया। छह महीने बाद पिताजी के नाम उसकी शादी का निमंत्रण-पत्र आया। पिताजी उस दिन बहुत प्रसन्न होकर बोले, 'चलो बेचारी प्रभा का विवाह हो रहा है। अच्छा है।' मुझे भी लगा कि अच्छा हो रहा है। अब उसका घर होगा। वह गृहस्वामिनी होगी। अब वह अपने को किसी ग़ैर का आश्रित तो नहीं समझेगी। मुझे यह सोचकर बड़ा अजीब लगा कि एक ख़ून से उत्पन्न भाई लोग ग़ैर हो जाते हैं और पराया आदमी अपना हो जाता है।

मेरी इच्छा थी, प्रभा की शादी में जाने की। पिताजी की भी इच्छा थी मुझे भेजने की। मैं शादी के दो दिन पहले पहुँचना चाहता था, ताकि शादी की भीड़-भाड़ होने से पहले प्रभा से बातें कर सकूँ। पिताजी ने भी चाहा कि मैं दो दिन पहले पहुँच जाऊँ ताकि प्रबंध में कुछ हिस्सा बँटा सकूँ।

मैं गाड़ी में बैठा, तो प्रभा को लेकर अनेक कल्पनाएँ करने लगा। वह मेरा आना सुनकर दौड़ी आएगी। उसे चिढ़ाऊँगा, उससे ढेर-सी अनर्गल बातें करूँगा, बचपन की यादें दिलाऊँगा। वह हँसेगी, रोएगी, चिढ़ेगी।

मैं जब उसके भाई के घर की ओर जाने के लिए स्कूटर में बैठा तो प्रभा को देखने की एक अजीब उत्सुकता मेरे मन में थी, कैसी हो गई होगी प्रभा? देखूँ पहचानती भी है कि नहीं।

पहुँचा तो दरवाज़े पर कुछ बच्चे खेल रहे थे। शादी की रौनक के कुछ चिह्न दिखाई नहीं पड़ रहे थे। मुझे संदेह हुआ कि कहीं ग़लत जगह तो नहीं पहुँच गया? बच्चों से पूछने पर मालूम हुआ कि नहीं, मैं ठीक ही जगह आ गया हूँ। तब तक दो बच्चे शोर करते भीतर भागे कि कोई आया है, कोई आया है।

भीतर से एक सज्जन निकले। मुझे सामान लिए हुए देखा तो पूछा, 'कहिए कहाँ से आए हैं?'

'कानपुर से। पं॰ वासुदेव द्विवेदी के यहाँ से।'

'अच्छा-अच्छा, आइए-आइए। आप विनोदशंकर हैं न?'

'जी!'

'मेरा नाम सुभाष है। मैं प्रभा का बड़ा भाई हूँ। माफ़ करना, मैं पहचान नहीं सका, कितने दिनों बाद देखा है।'

'हाँ, सचमुच ही तो कितने दिनों बाद देखा है। बनारस में भी आपको एकाध बार ही देखा था।'

'कहिए, फूफाजी कैसे हैं?'

'ठीक हैं।'

मुझे बहुत प्रसन्नता हुई इस आदमी से मिलकर और थोड़ा-सा आश्चर्य भी हुआ कि इतना अच्छा आदमी. ...अपनी माँ और बहन के प्रति सहज आत्मीय व्यवहार क्यों नहीं रख सका?

चाय पी चुका तो पूछा, 'कहाँ हो रही है प्रभा की शादी?'

'शादी बढ़िया हो रही है, विनोद! लड़का बी॰डी॰ओ॰ है, उन्नाव में। उन्नाव से बीस मील दूर एक गाँव में घर है। वहाँ खेती-बाड़ी भी है। कुछ बड़ा परिवार भी नहीं है, माँ-बाप, एक भाई और एक बहन गाँव में हैं लड़का बी॰डी॰ओ॰ है। जानते ही हो, इसमें अच्छी आमदनी है।'

'विवाह की सारी तैयारी तो हो गई होगी?'

'हाँ, हो ही गई है।'

'और भाई साहब लोग आ गए हैं?'

'आ जाएँगे, आजकल में।'

मुझे बहुत आश्चर्य हुआ कि अभी तक भाई लोग नहीं आए हैं। वे भी जैसे बारातियों के साथ ही आएँगे।

'देखिए, मेरे लायक़ कोई काम हो तो बताइए पिताजी ने मुझे दो दिन पहले इसीलिए भेजा है। मैं पहुनाई करने नहीं आया हूँ, यह मेरी बहन की शादी है, काम करने आया हूँ।'

'सो नाइस आफ़ यू।' कहकर सुभाष मुस्कराए, किंतु न जाने क्यों फिर उदास हो गए और मुझे भी लगा कि शायद अनजाने ही मैंने इन पर और इनके भाइयों पर कुछ चोट कर दी है।

चाय-वाय पी चुकने के बाद उन्होंने मुझसे कहा, 'चलिए, बगल के मकान में कुछ कमरे ले रखे हैं, अतिथियों के लिए यहाँ तो जगह ही नहीं है और शादी की पों-पों में आपको आराम भी नहीं मिलेगा।'

'अरे, मैं आराम करने थोड़े आया हूँ। मुझे काम बताइएगा।' कहता हुआ मैं उनके पीछे-पीछे चल पड़ा। दो मकान बाद के एक मकान में एक कमरे में उनके साथ मैं दाख़िल हुआ।

'कोई ज़रूरत हो तो बता दीजिएगा।' कहकर वे चले गए।

लगता है वह मकान शादी के लिए किराए पर लिया गया है मेहमानों के लिए। अभी और कोई आया नहीं है। एक कमरे में सामान रखा हुआ है। उसे ही खोल-बंद करने के लिए कुछ लोग आ-जा रहे हैं। मैं निहायत अकेला पड़ गया हूँ। अजीब बोरियत हो रही है। यह कस्बा है। कहीं कुछ घूमने-फिरने लायक भी तो नहीं होगा। मैं दो दिन पहले आया था कुछ काम करने के लिए और प्रभा से इत्मीनान से मिलने और यहाँ एकदम बोरियत ले बैठा। नहा-धोकर बैठा था कि नाश्ता-पानी आ गया। नाश्ता करके मैं सो गया। दोपहर को आकर किसी ने जगाया, 'चलिए, खाना खा लीजिए।' मैं चला तो मुझे विश्वास था कि अब तो प्रभा मिल ही जाएगी। खाना खाते वक़्त मैं औरतों और लड़कियों को आते-जाते देखता रहा। सोचता रहा, इनमें से कोई प्रभा होगी। लेकिन किसी भी लड़की के चेहरे पर प्रभा होने की सी उत्सुकता नहीं दिखाई पड़ी। बात क्या है? क्या प्रभा को मेरे आने की ख़बर नहीं है? क्या उसे मुझसे मिलने की उत्सुकता नहीं है? या क्या वह इन लड़कियों में नहीं है, कहीं और है? मैं बहुत चिंतित हो उठा। कुछ पूछते भी नहीं बनता था। मैंने फिर अपने को धिक्कारा कि तुम इतने बुजदिल क्यों हो? प्रभा तुम्हारी बहन है, कोई प्रेयसी तो नहीं है कि उसकी बात करने या उसके बारे में पूछने से घबरा रहे हो। आत्मधिक्कार से मुझमें बल आ गया और जब खा-पीकर चलने को हुआ तो प्रभा के भाई से पूछा, 'प्रभा बहन कहाँ है? दिखाई नहीं पड़ती। ज़रा उससे मिलवाइए! माँ ने उससे बहुत कुछ कहने को कहा है।'

'अरे, प्रभा यहीं तो थी। आपने पहचाना नहीं होगा?'

'कैसे पहचानना? बचपन में हम साथ खेलते थे, कितना समय गुज़र गया इस बीच।'

'अभी बुला रहा हूँ।' कहकर सुभाष वहाँ से चले गए। वे बहुत तत्परता से बात कर रहे थे, किंतु मुझे लगा कि उन्हें ख़ुशी नहीं हुई। पता नहीं क्यों, इस आदमी का सारा सौजन्य, सारा व्यवहार मुझे ऊपरी लग रहा था। शायद वे नहीं चाहते कि मैं प्रभा से मिलूँ। यदि वे चाहते तो मेरे आते ही अपने घर के लोगों से परिचय कराया होता, प्रभा वे मिलवाया होता। आते ही मुझे घर से बाहर एक दूसरे घर में फेंक दिया। शायद उन्हें डर है कि प्रभा मिलेगी तो अपना दु:ख-दर्द कहेगी, उनकी पोल खोल देगी।

थोड़ी देर बैठा रहा, कहीं कुछ नहीं हुआ। सोचा, चलूँ यहाँ से कि देखा एक लड़की मेरी ओर चली आ रही है, धीरे-धीरे! सौंदर्य से दीप्त; भरी-भरी लंबी काया। आकर वह सामने खड़ी हो गई और निरुद्वेग भाव से दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया। मैंने प्रणाम का उत्तर देते हुए पूछा, 'आप प्रभाजी हैं न?'

'पहचानते नहीं, विनोद भइया? मैं प्रभाजी नहीं, प्रभा हूँ!' उसने मंदस्मित के साथ गंभीर स्वर में कहा।

'ओह प्रभा! कितना समय बीत गया तुम्हें देखे हुए।'

'चलो, इतने दिनों बाद तो याद किया। इतनी बड़ी ज़िंदगी में इतना विलंब, विलंब नहीं माना जाना चाहिए। हर वस्तु की अपनी नियति होती है, समय की भी एक नियति होती है।'

'ओह, तुम यहाँ भी एक दार्शनिक भाषा में बात करने लगीं। तुम इतनी दार्शनिक क्यों हो गईं?'

'दर्शन व्यथापूर्ण मन को शक्ति देता है। जो कुछ हो रहा है उसके होने की तार्किक संगति बैठाता है दर्शन! यह न होता तो मैं किस भरोसे जी पाती, विनोद भइया!'

मैं भारी हो आया। उसने अनुभव किया, इसीलिए वह एकाएक अपनी गंभीरता झटककर हँसने लगी और बोली, 'अरे, छोड़ो इन बातों को, कहो, बुआजी कैसी हैं, फूफाजी कैसे हैं? कभी कोई याद करता है मुझे?'

'सभी ठीक हैं और तुम्हें तो इतना याद करते हैं कि मुझे भूलते जा रहे हैं।'

इस पर हम दोनों ख़ूब हँसे। हमने देखा, कुछ

औरत चेहरे चलते-चलते हमें देख लेते हैं, कुछ घूरते हैं, कुछ ठमक जाते हैं।'

'और अपनी सुनाओ, अब क्या करने का इरादा है?'

'एम॰ए॰ हो गया हूँ। कोशिश में हूँ कि कोई लेक्चररशिप मिल जाए।'

'और शादी-वादी?'

'वह भी हो जाएगी। आख़िर उसे भी तो होना ही होता है। कोई मेरे लिए भी तो शंकरजी को पूजती होगी। बहन की शादी हो रही है तो भाई की भी हो ही जाएगी।'

'हाँ, हो ही रही है।' वह उदास हो गई।

मैंने चारों ओर देखा कि कोई झाँक तो नहीं रहा है। फिर धीरे-से पूछा, 'क्यों प्रभा, तुम इस शादी से ख़ुश नहीं हो?'

'जो नियति है, उससे ख़ुश और नाख़ुश क्यों होना चाहिए? जो नियति अभी मेरी थी, वही कौन इतनी अच्छी थी कि दूसरी से भयभीत होऊँ? दूसरी नियति तो अभी अनजानी है, उसे लेकर कुछ सुंदर कल्पनाएँ की जा सकती हैं। बाक़ी वह जो होगी सो तो होगी ही।'

वह फिर दार्शनिक मूड में उतर आई थी।

'जीजाजी क्या हैं?

'सुना है, बी॰डी॰ओ॰, सी॰डी॰ओ॰ हैं।'

उसने जिस तरह बी॰डी॰ओ॰, सी॰डी॰ओ॰ कहा था उससे साफ़ झलक रहा था कि वह इस विवाह से प्रसन्न नहीं है। और ठीक भी है। मैं प्रभा की रुचि जानता हूँ। वह कलात्मक है। बी॰डी॰ओ॰ उसे कितना सह पाएगा, यह आशंका ज़रूर प्रभा को हो रही होगी!

'तुम्हारे और भाई लोग नहीं आए?'

'कौन भाई लोग?'

'अरे, तुम्हारे अन्य दो भाई?'

'हाँ, भाई लोग। वे लोग बारात के साथ आएँगे। उन्हें आने की फ़ुरसत नहीं मिल रही होगी। ख़ैर, मेरा असली भाई तो समय से आ ही गया।' कहकर वह मुझे देखने लगी।

मुझे अजीब-सा लगा।

'प्रभा....ओ प्रभा...' अरे चलो-चलो, बहुत-से काम करने हैं। बैठने से काम नहीं चलेगा।'

'भाभी हैं, वह चाहती हैं कि मैं अब यहाँ देर तक न बैठूँ। चलूँ, दो दिन और झेलने हैं, झेल लूँ। फिर मिलेंगे। मेरी ससुराल कभी-कभी आते रहना।' वह उठकर चली गई।

मैं धीरे-धीरे उठकर बाहर आया और अपने कमरे में चला गया। सोया। उठा। थोड़ा कस्बा घूमा। भाई साहब से फिर कहा कि कुछ काम बताइए। उन्होंने टाल दिया। शाम को खाना खाते समय प्रभा फिर दिखाई पड़ी। रात को सोचने लगा कि अभी कल का दिन पड़ा है, परसों शाायद शाम तक बारात आएगी। तब तक क्या करूँगा? इच्छा हुई, चुपचाप घर लौट जाऊँ लेकिन मेरे इस तरह लौटने का कुफल प्रभा को भोगना पड़ेगा। न जाने लोग उसे क्या-क्या कहेंगे? नहीं गया। ऐसे ही घूम-फिरकर, खा-पीकर समय बिताया।

बारात आई। बी॰डी॰ओ॰ साहब की भोंड़ी-सी क्रूर शक्ल देखते ही मेरा मन तीता हो गया। क्या भाइयों ने इन्हें देखा नहीं था? क्या अपनी बहन के रूप के साथ इनकी शक्ल-सूरत का मेल नहीं बैठाया? लगता है कि प्रभा को घर से निकालना ही उनका प्रमुख उद्देश्य था, फिर वह चाहे जहाँ भी जा गिरे। बारात आने के दिन और भाई भी आ गए थे।

प्रभा विदा होने लगी तो रोई नहीं। आँखों में उदास ख़ामोशी का गहरा दबाव लिए वह अपने परिजनों से विदा ले रही थी। मैं किनारे खड़ा था। मुझे देखा, हाथ जोड़कर नमस्कार किया, झट से कार में जा बैठी और फफककर रो पड़ी। मैं समझ गया कि मुझे देखते ही उसकी सारी ख़ामोश जड़ता टूट गई। लेकिन मेरे सामने रोना उसने लोकदृष्टि से उचित नहीं समझा और झट से कार में बैठकर फफक पड़ी।

मैंने भी उसके दो घंटे बाद की गाड़ी पकड़ ली और घर लौट आया था। भगवान् से प्रार्थना की थी कि प्रभा को उसकी ससुराल में सुखी रखे।

लेकिन भगवान् ने मेरी एक नहीं सुनी। पता नहीं,

कहानियाँ
अमेरिका से
कहानी-संग्रह

संपादक
डॉ॰ इला प्रसाद

मूल्य :
150 रुपए

हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर

वह किसी की सुनता भी है या नहीं? प्रभा की चिट्ठियाँ आती रहीं। पहले तो उसने छिपाया लेकिन बाद में खुलती गई। उसकी चिट्ठियों से मालूम पड़ा कि बी॰डी॰ओ॰ साहब ने उसे अपनी माँ के पास गाँव में पटक दिया है; खुद कस्बे में रहते हैं। महीने-दो-महीने में कभी-कभार आ जाते हैं और अपनी माँ तथा बहन से उसके विरुद्ध शिकायतें सुनते हैं और फिर सभी मिलकर समवेत स्वर में उसका प्रशस्ति-गान शुरू करते हैं और पीटते हैं। उनकी शिकायत है कि वह दरिद्र की बेटी की तरह आई है और घर के काम-काज में मन न लगाकर किताबें पढ़ती है और न जाने क्या लिखती रहती है।

'क्या लिखती रहती हो?' उन्होंने पूछा।

'अरे, घर की शिकायत लिखती होगी, और क्या लिखेगी!' माँ ने कहा। बहन ने भी दुहराया। दोनों अपढ़ हैं। बी॰डी॰ओ॰ साहब को तो देख ही चुके हो वे भी इसी खान में से निकले हैं।

'चलो दिखाओ, क्या लिखती हो?'

'अरे, कुछ नहीं लिखती हूँ; वैसे ही जी में आता है तो काग़ज़ गोंजने लगती हूँ।' 'नहीं-नहीं, दिखाओ!' कहकर वे मुझे घसीटते हुए अंदर ले गए और मेरी किताबें और काग़ज़ इधर-उधर फेंकने लगे–'कहाँ है तुम्हारा लिखा हुआ? इसे लाइब्रेरी बना रखा है? घर में काम नहीं करेगी, लाइब्रेरी बनाएगी! कहाँ है वह काग़ज़?' तब तक मेरी डायरी उनके हाथ पड़ गई–'यही है?'

'जी!' मैंने स्वीकृति में सिर हिलाया।

और वे उसे खोलकर पढ़ने लगे। उनके पास उनकी माँ और बहन भी आ गई थीं। उनके पढ़ने का ढंग बहुत विद्रूप था। उनकी विद्रूप मुद्रा पर उनकी माँ और बहन हँस रही थीं।

'यह सब क्या वाहियात चीज़ें हैं, यह क्या अनाप-सनाप लिखा है! यह कोई कविता है, कहीं पागल तो नहीं हो गई है!' और उन्होंने डायरी फाड़नी शुरू कर दी।

'अरे रे, यह क्या करते हैं आप?' कहकर मैं झपटी। उन्होंने धक्का देकर मुझे गिरा दिया, दो लातें मारीं और डायरी फाड़कर चिंदी-चिंदी कर दी। फिर उन्होंने हिदायत दी कि यह सब वाहियात बातें छोड़ो और घर के काम-काज में मन लगाओ।

'काम तो करती हूँ। यह सब तो काम-काज के बाद लिखती हूँ।'

'तो क्या माँ झूठ बोलती हैं?' उन्होंने गरजकर पूछा।

मैं कैसे कहती कि झूठ बोल रही हैं, चुप रही। लेकिन भीतर-भीतर एक आग उठी। इच्छा हुई, इस बुढ़िया को धक्का देकर ज़मीन पर पटक दूँ और बी॰डी॰ओ॰ साहब से कहूँ, जाइए, अपना घूस-घास का काम देखिए। आपके बाप-दादों ने भी कभी कविता पढ़ी और समझी है? और कहूँ कि क्या इस खूसट बुढ़िया और इस छिछोरी बहन के लिए मुझे ब्याहकर लाए थे? लेकिन कैसे कहती यह? वे मेरे पूज्य पति हैं, स्वामी है; लोक और शास्त्र दोनों इनकी और इनकी माँ की पूजा करने को कहते हैं। फिर कभी।

'फिर कभी?' क्या फिर कभी? 'फिर कभी' के साथ प्रभा ने अपनी चिट्ठी समाप्त की थी और मैं फिर कभी के चक्कर में पड़ गया। फिर कभी चिट्ठी लिखेगी या उसके मन के भीतर उभरने के लिए जो विद्रोह मचल रहा है उसे फिर कभी उभरने देगी, अभी नहीं? शायद दोनों ही बातें हैं।

प्रभा की चिट्ठियाँ आती रहीं। बस हाल-चाल। उसने मुझे उसके हाल के बारे में चिट्ठी लिखने से मना कर दिया था। पता नहीं, किसके हाथ पड़े और वह समझे कि बाहरवालों से घर की शिकायत करती रहती है। उसने मुझे केवल अपने घर का हाल-चाल लिखने को कहा था। लेकिन हाल-चाल वाली उसकी चिट्ठियों में भी एक बंद व्यथा या आग रहा करती थी, घरवालों के व्यवहार कटु होते जा रहे हैं। हाँ, बेचारे ससुरजी अच्छे हैं लेकिन पत्नी के आगे उनकी चलती नहीं। रिटायर्ड आदमी हैं, बेबस! कभी-कभी वे अपनी पत्नी और बेटों को डाँटते हैं कि क्यों तुम लोग बहू को परेशान करते हो तो सास जी डाँट देती हैं 'तुम चुप रहो जी, खाओ-पियो और राम-राम जपो!'

'देवर भी अच्छा है, लेकिन उसकी औक़ात क्या? वह छोटा है, आठवीं में पढ़ता है। मुझे प्यार करता है। मेरे पास बैठता है, प्यारी-प्यारी बातें करता है और डाँट खाता है। विनोद, मैं कविता लिखना नहीं छोड़ सकती; वह मेरा जीवन बन गई है। और सहारा ही किसका है?....अब तो चित्र भी बनाने लगी हूँ। कभी भेजूँगी। मैं निकम्मी घरेलू औरत बनकर नहीं जी सकती। मैंने उनसे कह दिया है कि मुझे अपने साथ ले चलिए; मैं यहाँ नहीं रह सकती। मैं ज़िंदगी जीना चाहती हूँ, इसे केवल दूसरों की अर्थहीन ख़ुशी के लिए शव की तरह अपने कंधे पर ढोना नहीं चाहती। या तो ज़िंदा रहूँगी या शव ही बन जाऊँगी। जीवित शव मैं नहीं बन सकती। लेकिन वे तैयार नहीं हुए। उन्होंने मुझे बहुत भला-बुरा कहा। लगता है, विनोद भइया, कोई अभिशाप मेरे जीवन के साथ शुरू से लग गया है, नहीं तो पिता जी क्यों मरते, माँ मुझे छोड़कर क्यों

चली जातीं और तीन-तीन भाई मुझे प्यार और शक्ति देने के स्थान पर तिरस्कार और अशक्ति क्यों देते? और उनसे छूटकर भी मैं ससुराल के ऐसे परिवार में क्यों गिरती? लगता है, कहीं कोई नियति है, कुछ पहले से तय है। लेकिन मैं यह नियति ढोने से हमेशा इंकार करती रही, मेरी पीड़ा का एक राज़ यह भी तो है! लेकिन मैं क्या करूँ, इस नियति के दबाव में रेंगना मैं नहीं चाहती, मैं खड़ी होकर चलना चाहती हूँ, विनोद भइया! खड़ी होकर चलने के लिए ही तो मैंने कलाओं का सहारा लिया है। और सहारा ही क्या है? क्या तलाक़ ले लूँ? लेकिन वे तलाक़ देने ही क्यों लगे! और तलाक़ लेकर भी क्या करूँगी, कहाँ जाऊँगी? नौकरी कौनसी मिलेगी मुझे? बी॰ए॰ पास नहीं कर सकी, इम्तहान देने से पहले ही शादी हो गई और एक बच्चे की ज़िंदगी भी तो ढो रही हूँ पेट में। कुछ समझ में नहीं आता क्या करूँ? अच्छा छोड़ो, तुम्हें बहुत बोर किया। फिर कभी।'

लगा, जैसे प्रभा चक्रव्यूह में फँस गई है, निकलना चाहती है, लेकिन जितना ही निकलने के लिए हाथ-पाँव मार रही है उतना ही अधिक फँसती जा रही है, मगर मैं क्या करूँ? सगी बहन होती तो कुछ करता भी, यहाँ तो दाल-भात में मूसरचंद की स्थिति हो जाएगी। पता नहीं मेरे पत्र देखकर घरवाले क्या सोचते हों। बहुत छोटी मानसिकता के लोग हैं। वे ज़रूर पूछते होंगे कि यह कौन है? हो सकता है, संदेह भी करते हों। प्रभा ने एक बार इशारा भी किया था। मुझे विश्वास है, प्रभा अपने भाइयों को कुछ नहीं बताती होगी, शायद उन्हें चिट्ठी भी नहीं लिखती होगी। क्या किया जाए कुछ समझ में नहीं आता। थम-थमकर ऐसे ही चिट्ठियाँ आती रहीं और मैं थम-थमकर इसी मन:स्थिति में आ जाता था। उसे कुछ लिख भी तो नहीं सकता था, उसने मना जो कर रखा था।

फिर एक पत्र। उसने लिखा था, 'पतिदेव से मेरी लड़ाई हो गई। मैं घर में उनकी उपस्थिति में ही अपने कमरे में बैठी एक चित्र बना रही थी। उसी में तन्मय थी। शायद पतिदेव ने आवाज़ दी होगी। मैंने सुनी नहीं। एकाएक बूढ़ी की आवाज़ सुनाई दी—सुनेगी कैसे? किसी यार को चिट्ठी लिख रही होगी या कुछ गोंज-गाँज रही होगी।' मैं चौंक उठी। पतिदेव धड़ाके से अंदर आए और डपटकर पूछा—'सुनती नहीं हो? क्या कर रही हो?'

'कुछ नहीं, यों ही मन बहला रही थी।'

'देखूँ तो, क्या कर रही हो?' कहकर वे मेरे चित्र की ओर झपट पड़े। बोले—'यह क्या? कुत्ता, भेड़िया, अजगर.....यह सब क्या है? पागल तो नहीं हो गई हो! तुम्हारे दिमाग़ में दुनिया-भर की खुराफ़ात कहाँ से भर गई है?' मैं कुछ बोली नहीं। उन्होंने चित्र को उठाया तो मैंने निरुद्वेग भाव से कहा—'देखिए, फाड़िएगा नहीं!' उन्होंने मुझे निरुद्वेग देखा तो क्रुद्ध हो उठे। बोले फाड़ दूँ तो?

'तो फिर बनाऊँगी।'

'फिर फाड़ दूँ तो?'

'तो फिर बनाऊँगी?'

उन्होंने पाँच बार फाड़ने की बात कही, मैंने हर बार फिर बनाने की बात कही।

'तो जहन्नुम में जाओ!' कहकर उन्होंने तख़्ती समेत मेरा चित्र ज़मीन पर फेंक दिया। मैं भीतर-भीतर बहुत प्रसन्न हुई, अपनी जीत पर। लगा कि मैं अपनी भीतरी ताक़त से जी सकती हूँ। लेकिन कमरे के बाहर गाली-गलौज चलती रही। ससुरजी की आवाज़ आई—'तुम लोग क्यों उस लड़की को बर्बाद करने पर तुले हो? तुम क्यों नहीं उसे साथ ले जाते?'

'तुम चुप रहो, जी!' सासजी डपटीं।

'तुम चुप रहो, आज तक मैं बहुत चुप रहा। देखता हूँ, तुम लोग मिलजुलकर एक देवी-सी लड़की का नाश कर दोगे। क्या बिगाड़ा है उसने तुम लोगों का? देखते-देखते कोफ़्त हो गई!' उन्होंने सीधे बी॰डी॰ओ॰ साहब से पूछा—'क्यों जी, तुम उसे साथ रखने में कौनसी असुविधा महसूस करते हो? वहाँ कोई रखैल तो नहीं रख ली है?' इसके बाद तीनों ने मिलकर पिताजी की जो दुर्गति की, वह अकल्पनीय थी। देवर आँखों में तरलता भर-भरकर मुझे कई बार देख गया और फिर रोने लगा। मैं कमरे में थी, बाहर निकली और ससुरजी से प्रार्थना की—'पिताजी, आप कृपा करके मेरे लिए इन लोगों से कुछ मत कहिए! मैं, जो भोगना है भोग लूँगी, लेकिन आप जैसे देवता का अपमान मेरे लिए बहुत कष्टकर होगा।'

'अरे, ये सब चाहे मेरी चमड़ी ही नोच लें, लेकिन मैं सही बात ज़रूर कहूँगा!' बहुत शोर-शराबे के बाद वह कांड समाप्त हुआ।' लेकिन मेरे मन में एक असमंजस पैठ गया कि सचमुच बी॰डी॰ओ॰ महाराज ने कस्बे में कोई रखैल रख ली है। और इसीलिए मुझे साथ नहीं रखते? रख ली हो तो रख लें, मुझे तो अपने हाल पर छोड़ दें। फिर कभी.....

और फिर एक पत्र—'बेटी पैदा हुई है। बहुत प्यारी-सी है। किंतु सारा घर बौखलाया हुआ है कि मैंने बेटा क्यों नहीं पैदा किया। रोज़ दो-चार ताने सुनने पड़ते हैं। केवल ससुरजी और देवर उसे मन से खिलाते हैं। सास और ननद तो उसे छूती ही नहीं। मुझे तो जीने का एक और सहारा मिल गया है, विनोद भइया। वह साक्षात् कला मालूम पड़ती है। उसके साथ अपने ख़ाली क्षणों

को भरती हूँ और सार्थक करती हूँ। चित्र भी इसी के बनाती हूँ और कविताएँ भी इसी पर लिखती हूँ। सासजी इस बच्ची के साथ मेरे मगन होने पर भी गालियाँ सुनाती हैं 'एक तो कलमुँही ने लड़की जनी, दूसरे उसे छाती से चिपकाकर घर-द्वार की सुध-बुध ही भूल गई है। उसका चित्र तुम्हें भेज रही हूँ। फिर कभी।'

चित्र बहुत प्यारा था। बच्ची तो सुंदर होगी ही; उसमें चित्रकार माँ का सारा अनुराग और सौंदर्य-बोध जो घुल गया है। अच्छा हुआ, प्रभा को एक सहारा मिल गया।

इस बार बहुत दिनों तक पत्र नहीं आया। मेरा जी हल्का हो गया कि चलो, प्रभा का मन अपनी बिटिया में रम गया। फिर एक छोटा-सा पत्र आया–

'माफ करना विनोद भइया, तुम्हें पत्र नहीं लिख सकी। बीमार हूँ। बीमारी का पता नहीं चल रहा है। लेकिन घबराओ नहीं, ठीक हो जाऊँगी। फिर कभी।'

मैं लैक्चरर बन गया था और मेरी शादी भी एक लैक्चरर लड़की से हो गई थी। मैं धीरे-धीरे अपनी गृहस्थी में डूब गया था, लेकिन बीच में प्रभा की चिट्ठी आकर उसकी याद जगा जाती थी। अब लगातार छोटी-छोटी चिट्ठियाँ आ रही थीं। उनमें उसकी बीमारी के गहराते जाने को सूचना होती थी। ऐसा लगता था जैसे वह दो-चार पंक्तियाँ लिखते-लिखते थक जाती थी। घर वालों की उस ऊब और यातनाप्रद व्यवहार का भी संकेत होता था, जो उसकी बीमारी के साथ बढ़ता जा रहा था।

एक दिन एक पुलिंदा मिला। खोला। प्रभा के बनाए हुए चित्र थे। करीब पचास रहे होंगे। पुलिंदे के साथ एक चिट्ठी थी–'ये चित्र भेज रही हूँ। पता नहीं ये तुम्हें कैसे लगें, लेकिन ये मेरे ख़ून से बनाए गए चित्र हैं। घबराओ नहीं, सचमुच मैंने अँगुली काट-काटकर ख़ून निकाल-निकालकर चित्र नहीं बनाए हैं, फिर भी ये मेरे ख़ून से बने हैं। मेरा पता नहीं क्या हो। ये मेरे चित्र यहाँ फ़ालतू काग़ज़ मानकर फेंक दिए जाते। ये तुम्हारे पास सुरक्षित रहेंगे। बेटी यदि ज़िंदा बचे तो बड़ी होने पर उसे दे देना, ताकि वह इन चित्रों के ज़रिये अपनी माँ को पहचान सके। कविताएँ भी भेजूँगी, उन्हें फेयर कर रही हूँ। फिर कभी।'

मैंने देखा कुछ चित्र थे, कुछ स्याही से बनाए गए थे, विशेषतया लाल स्याही से, कुछ लाल पेंसिल से। हाँ, उस बेचारी को विविध रंग कहाँ से मिलते? कौन लाकर देता? इन चित्रों में कहीं उदासी थी, कहीं अवसाद था, कहीं विद्रोह था। एक चिड़िया आकाश में उड़ रही है और एक बहेलिए का जाल उसका पीछा कर रहा है। एक मंदिर है, जिसमें कुछ वनमानुष कीर्तन कर रहे हैं। एक बच्चा है, जिसकी मासूम आँखें अपने पिता की भयानक आँखों के सामने भय से स्तब्ध हो गई हैं। जाड़े की उदास शाम में एक बियाबान में एक यात्री भटका हुआ है। शस्त्रों से लदे कुछ पाँव वसंत की फूलों भरी घाटी को रौंद रहे हैं। लाल जीभ निकाले हुए एक अजगर एक मृगछौने पर घात लगाए बैठा है। जंगल में जलती आग, दिशाओं को जलाती लाल-लाल दोपहरी। घाटी को जलाते

पलाश के लाल-लाल फूल, ताज़ा घाव से झरती ख़ून की धारा, समुद्र में डूबती लाल-लाल शाम और बहुत कुछ। न जाने कितने संक्रांत भाव इन चित्रों में है, न जाने ये किन-किन अर्थों के बिंब है, न जाने प्रभा किन-किन रूपों में खुद भी इन बिंबों में हैं। मैंने यह चित्र सहेजकर अपने बक्स में रख लिए। पत्नी से ज़िक्र नहीं किया। मैं तो उद्विग्न हो ही रहा था, पत्नी को भी क्यों उद्विग्न करूँ?

और यह आख़िरी चिट्ठी। मैंने अब ध्यान दिया कि इसमें अंत में 'फिर कभी' नहीं लिखा था। इसलिए मैं इसी चिट्ठी को बार-बार पढ़ने लगा। सोचने लगा, कविताएँ शायद आती हों या शायद मरते समय तक फेयर न हो सकी हों और अब ग़ैरज़रूरी काग़ज़ समझकर घर वालों द्वारा फाड़कर फेंक दी जाएँ। एक बार फिर यह चिट्ठी आद्योपांत पढ़ गया–

भइया,

यह मेरी आख़िरी चिट्ठी है। मैं जा रही हूँ। इस दुनिया में तुम्हारे सिवाय और कोई नहीं है, जिससे मैं आख़िरी शब्द भी कह सकूँ। मैं अपनी बेटी और अपनी कहानी छोड़े जा रही हूँ। दोनों एक ही हैं। हाँ, भइया, दोनों एक ही हैं। मेरी बेटी के माध्यम से फिर मेरी कहानी की पुनरावृत्ति होगी, दोनों को शायद कोई नहीं स्वीकार करेगा। एक माँ को मरते समय अपनी बेटी को अपनी कहानी से शापित नहीं करना चाहिए, यह मैं जानती हूँ, भइया! लेकिन क्या करूँ, जिस अकेलेपन और संबंधहीनता के जंगल में बेटी को छोड़कर जा रही हूँ उसमें उसकी और गति ही क्या हो सकती है? कौन है जो उसे सँभालेगा? कहने को तो उसकी दादी भी हैं, बाप भी हैं, लेकिन ये सब केवल कहने के लिए हैं, उसकी सुरक्षा के लिए नहीं हैं; संबंधों की बेड़ी जकड़ने के लिए हैं। शायद इनके संबंधों से मुक्त होकर वह अपने भाग्य के सहारे जी भी लेती, लेकिन इन संबंधों की जकड़न में वह मेरी या मुझ जैसी लड़कियों की कहानी की पुनरावृत्ति ही करेगी। संबंधों की ये बेड़ियाँ न होतीं तो शायद तुमसे एक बार साहस करके कहती कि मेरी थाती को सँभालना और मेरी कहानी की पुनरावृत्ति से इसे बचाना। लेकिन संबंधों के भयावह यथार्थ को मैं जानती हूँ। ये न सुरक्षा देते हैं, न मुक्त करते हैं, केवल अपने पूरे बोझ से आदमी पर लदे होते हैं। और मैं तुम पर अपना बोझ डालती भी तो किस अधिकार से! जब मेरे भाई, पति, सास सभी ने अपने संबंधों से जकड़कर केवल मारा-पीटा, केवल उपेक्षा की, केवल ज़हर दिया, फिर तुमसे मेरा क्या संबंध? नहीं, मैं भूल रही हूँ, संबंध नहीं है, तभी तो तुमसे मैं यह सब-कुछ कह रही हूँ। शायद जाने-पहचाने संबंधों से परे भी एक संबंध होता है, जो आरोपित नहीं होता, स्वयं बनाया गया होता है, जो अधिक मानवीय और विश्वस्त होता है। इस जीवन में तुमसे जो प्यार और आत्मीयता पा सकी, उसी से लगा कि यह जीवन है, नहीं तो जीवन लगने जैसी और क्या बात थी इस प्यासे जीवन में? चलते-चलते तुम्हें एक बात बताऊँ। माँ ने पिता जी के मरने पर उनके ख़ून से सनी मिट्टी का टुकड़ा सहेजकर रख लिया था। माँ के मरते समय मैंने मिट्टी के उस टुकड़े में से थोड़ा निकाल लिया था। और आज ख़ुद मरते समय उसे अपने ब्लाउज के नीचे रख ले रही हूँ। माँ और पिता जी के संबंधों की ऊष्मा मुझे अपने दांपत्य जीवन में कहाँ मिली? यह तो ठीक उसके उल्टा जीवन मिला। प्यार के संबंध की ऊष्मा.....महसूस करने के लिए उसे छाती से चिपकाए मर रही हूँ। अच्छा भइया, अलविदा.....अलविदा

तुम्हारी बहन
प्रभा'

तो प्रभा चली गई? न जाने कैसा-कैसा लग रहा था। एक अवसन्न उदासी ने मन को ग्रस लिया था किंतु भीतर-भीतर कहीं चित्त हलका भी हो रहा था कि चलो, प्रभा को मुक्ति मिली; रोज़-रोज़ के मरने से मुक्त हो गई प्रभा। लेकिन उसकी बेटी? अनाथ, निर्धारित और नारी की वही कहानी दुहराने के लिए अकेली छोड़ दी गई बेटी! उसका क्या होगा? लगा, जैसे सूनी रेत के विस्तार में मछली की तरह सोई हुई एक लड़की हाथ-पाँव फेंककर रो रही है, रोते-रोते उसका गला बैठ गया है। कोई नहीं है सुननेवाला, कोई नहीं है देखनेवाला।

मैं सोचता हूँ, उठा लूँ उसे लेकिन देखता हूँ, दूर खड़े होकर कुछ लोग सावधान हैं कि उसे कोई उठाने न पाए और फिर मेरे अपने पाँव भी तो उलझे हुए हैं अपनी परिस्थितियों के जाल में। कहाँ उठ पाएँगे आसानी से।

नहीं, मुझे इतना निराश नहीं होना चाहिए। प्रभा की बेटी एक विद्रोही की कविता है, उसके प्यार और आग भरे हृदय से फूटी हुई एक मूर्त कविता। वह घूरे पर नहीं फेंकी जा सकती। नहीं, वह अवरोध पाकर और उठेगी, वह अपनी ही लपटों की झालर में अपनी रक्षा करेगी। प्रभा ने एक नई शुरुआत की है, जिसमें खुद तो होम हो गई, किंतु होम होकर उसने जो ताप और दीप्ति दी है, वह नहीं मरेगी।

आर 38, **वाणीविहार, उत्तमनगर**
नई दिल्ली 110059;
दूरभाष : 011-28563587

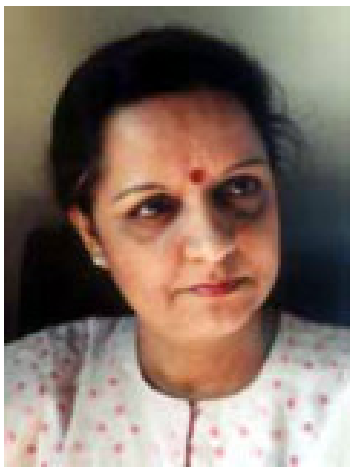

महानगर की मैथिली

सुधा अरोरा

'नहीं मम्मी, पहले पानी गरम करो। कहा ना, हम ठंडे पानी से नहीं नहाएँगे। आज तो बहुत सर्दी है...क्यों, टाइम क्यों नहीं है? देर क्यों हो रही है? अभी तो सायरन भी नहीं बजा। मम्मी, आप झूठ बोल रहे हो, हमको पता है सब, आज तो कहीं भी नहीं जाना है। आज तो हॉलीडे है–'मैज़िक लैंप' वाला डे–संडे! कल तो आपका हाफ़-डे था। फिर आज कैसे जाना है...' मैथिली नल को कसकर थामे, दीवार से सटी खड़ी थी–'ओफ़, मम्मी, एक बार कह दिया ना, हम ठंडे पानी से नहाएँगे ही नहीं. ..होने दो देर।'

तड़ाक्! उधर कमरे में दीवार को खरोंचती हुई टूटे कप-प्लेट की किरचें और चाय ज़मीन पर बिखरी पड़ी थी। 'दोनों बाप-बेटी एक-जैसे...' चित्रा भुनभुनाती हुई कमरे में दाख़िल हुई–'अब आपको क्या तकलीफ़ हो गई?'

दिवाकर कंबल एक ओर फेंककर अख़बार सामने रखे मुँह फुलाए बैठे थे–'सारा मूड बिगाड़कर रख दिया। यह कोई चाय है? स्वाद ही नहीं है चाय का!'

सुबह-सुबह दिवाकर का मूड चाय के इर्द-गिर्द घूमता था–'पचास बार कहा है, ग्रीन लेबल ही लाया करो।'

'बाबा? वही चाय है। कभी उन्नीस-बीस हो जाती है, उसके लिए इतनी तोड़-फोड़ की क्या ज़रूरत है?' चित्रा ने भी उसी तल्ख़ी से ज़मीन पर फैली चाय के नज़दीक जाता कंबल ऊपर खींचा और मैथिली का छोटा-सा पलंग बड़ी बेसुरी आवाज़ के साथ भीतर सरकाया–'हमारे घर में महीने की आख़िरी तारीख़ों का ऐलान करने के लिए दो-चार कप-प्लेट, गिलास टूटने बहुत ज़रूरी हो गए हैं। पड़ोसियों को पता कैसे चले कि महीना ख़त्म हो रहा है।'

चित्रा ने बड़ी फुर्ती से टूटे काँच के टुकड़े समेटे, बिखरी चाय साफ़ की और जाते-जाते कह गई–'साढ़े नौ बजे त्रिवेदी को चर्चगेट स्टेशन पर मिलने को कहा है और अभी घड़ी देख लो। वहीं पड़ी है।'

उधर मैथिली का अपना राग चल रहा था। 'मै-थि-ली। मेरा नाम मैथू है।' दूसरे बच्चों की तरह 'अमाला लाम...' की जगह सवा साल की मैथिली ने जब पहला वाक्य अटक-अटककर, लेकिन एकदम साफ़ बोला था तो सब चौंके थे। बस, उसके बाद बोलना आते ही वह धाराप्रवाह बातें करने लगी थी। चित्रा को देखते ही वह दौड़ी चली आई–'मम्मी, हमने चप्पल पहन ली है, नहीं तो काँच चुभ जाएगा।' फिर बड़ी शरारत-भरी अदा से बोली, 'पापा ने आज फिर प्लेट तोड़ी ना।'

'चुप कर!' चित्रा ने उसे झिड़क दिया और उसे खींचती हुई बाथरूम तक ले गई। मैथू के चौकन्ने होने से पहले ही उस पर दो-तीन लोटे पानी उँड़ेल दिया।

'मम्मी...' ग़ुस्से में लाल सुर्ख़ मुँह किए वह गला फाड़कर चीख़ रही थी–'हम कट्टी हैं तुमसे! ठंडे पानी से नहला दिया–डर्टी...डर्टी मम्मी...!' और दूसरे ही पल वह सचमुच सर्दी से काँप रही थी।

चित्रा ने जल्दी-जल्दी उसे तैयार किया। मैथू ने जलती हुई आँखों से मम्मी को घूरते हुए अपनी छोटी अँगुली दिखाई–यानी कट्टी और ख़ुद को ढीला छोड़ दिया, '...ठीक है, जो चाहे कर लो, लेकिन हम कट्टी तो हैं ही तुमसे।'

दिवाकर शेव करते समय अपने गाल पर ब्लेड चला बैठे थे। बहते ख़ून पर तौलिया दबाए खीझ रहे थे–'बिगाड़ रखी हैं उसकी आदतें। बारह महीने गरम पानी से नहाएँगी। देखो, कैसी बुत बनी बैठी। चलो मैथू बेटे! जल्दी से नाश्ता कर लो, देर हो रही है।'

मैथू एकदम उठी और पलंग के कोने में दुबककर बैठ गई। तमककर बोली–'इसीलिए संडे को हमारे बाल भी नहीं धुलाए और एक 'पोनी टेल' बना दी। फिर मम्मी बोलेंगी, इतनी जुँएँ कहाँ से आती हैं! पाउडर भी नहीं लगाया और ये ऊँची-ऊँची फ्रॉक पहना दी। हम शर्मा आंटी के घर कभी ये फ्रॉक पहनकर जाते हैं 'मैज़िक लैंप' देखने? और हमको जूते-मोज़े नहीं पहनने थे, चप्पल पहननी थी...अब हमें कहीं नहीं जाना...।' वह शिकायतों का पुलिंदा बनी बैठी थी।

'नहीं, बेटे! हम लोग तो एक आंटी को देखने चर्चगेट जा रहे हैं–हॉस्पिटल। बीमार हैं वो! हॉस्पिटल बहुत गंदी जगह होती है। हम बहुत जल्दी आ जाएँगे।' दिवाकर उसे समझा रहे थे।

मैथू चहककर उठी और अपनी तीखी आवाज़ को भरसक मुलायम बनाकर बोली–'पहले क्यों नहीं बताया? चर्चगेटवाले फेयर में भी जाएँगे न हम लोग? हाँ, मम्मी ने प्रॉमिस किया था कि एक दिन फिर से फेयर पर ले चलेंगे। वहाँ तुम लोग कॉफ़ी पीना और हमें एक रुपया देना। बस! वन रुपी ओनली! हम चार बार झूले में बैठकर आएँगे। हमको वहाँ ले चलोगे न, पापा!'

दिवाकर ने उसे गोद में उठाकर पुचकारा था–'देखो बेटे, आप तो बहुत समझदार हैं...।'

बच्चे झूठे आश्वासन का स्वर और स्पर्श पहचानने में बहुत तेज़ होते हैं। दिवाकर की आवाज़ से मैथिली ने भाँप लिया था कि वे उसे साथ नहीं ले चल रहे हैं और वह उनकी पकड़ से छूट भागी थी–'हम नाश्ता नहीं करेंगे। हमें भूख नहीं है।'

मान-मनौबल और नाश्ते का वक़्त ही नहीं था। सड़क पर आते ही मैथू गुमसुम-सी दूसरी ओर मुड़ने लगी तो दिवाकर खीझे–'वहाँ कहाँ जा रहे हो बेटा! सीधे चलो!'

'हमें साथ ले चल रहे हो?' मैथू ने फिर उम्मीद-भरे स्वर में पूछा।

'नहीं।'

'तो हमें शर्मा आंटी के घर छोड़ दो। टी॰वी॰ देखेंगे, फिर घर वापस आ जाएँगे। आप लोग तब तक वापस नहीं आओगे?'

'हमें देर लग जाएगी।' शर्मा आंटी तो 'मैजिक लैंप' ख़त्म होते ही कह देंगी–तुम्हारी मम्मी आवाज़ दे रही है, मैथू! घर जाओ!'...'हम तुम्हें ताराबाई के घर छोड़ देंगे।'

'नहीं मम्मी!' मैथू का गला भर्रा आया था–'आज संडे को भी हमें ताराबाई के घर छोड़ेंगे आप! हम ताराबाई के यहाँ नहीं रहेंगे...' और वह हाथ छुड़ाकर तेज़ी से दूसरी ओर भाग निकली थी।

दिवाकर उसके पीछे-पीछे दौड़े और उसे ज़बरदस्ती उठाकर लाए–'देखो, मैथू, अगर तुमने तंग किया ना, तो हम सीधे तुम्हें ले जाकर हॉस्टल में डाल देंगे। अभी!'

'अच्छा!' मैथू ने पापा का ग़ुस्सा सूँघते हुए आवाज़ धीमी कर दी थी– 'हमको हॉस्टल छोड़ दोगे तो भी हम आपके साथ ही जाएँगे। हम ताराबाई के यहाँ नहीं रहेंगे!'

'ओफ़! क्या ज़िद्दी लड़की है, यार तुम्हारी! कोई बात समझने को तैयार ही नहीं है। बेटा, जितना मन हो रो लो, लेकिन अपने साथ हम तुम्हें आज ले जा ही नहीं सकते। समझे!'

दूसरी गली मुड़ते ही झोपड़पट्टी शुरू हो गई थी। इस गली को देखते ही मैथू पापा के गले में दोनों बाँहें कसकर बिसूरने लगी थी। देखा तो उसके दोनों गाल आँसुओं से तर थे। पता नहीं, इस तरह बेआवाज़ रोने की आदत उसमें कबसे आई थी। इस तरह रोते हुए अचानक अपनी उम्र से बहुत बड़ी लगने लगती थी। न मुँह से कोई आवाज़, न सिसकियाँ, बस, आँखों से लगातार चुपचाप आँसू बहने लगते थे।

इस बार चित्रा ने उसे दुलारा–'बेटा, रोज़ तो रहती हैं आप! बस, जिस दिन मम्मी-पापा को काम हो, उसी दिन ज़िद चढ़ जाती है।'

मैथू ने रुँधे गले से बोलने की कोशिश की थी–'लेकिन संडे को हम...' न बोल पाने की झेंप में वह दिवाकर की गोद से उतर, बग़ैर अँगुली पकड़े, उस सँकरे रास्ते के दूसरी ओर अकेले चलने लगी थी।

क़तार में ताराबाई की 'खोली' आख़िरी थी। उसके बाद खुला मैदान था और दूसरी तरफ़ चौड़ी खाड़ी। ताराबाई का घर अपेक्षाकृत साफ़-सुथरा था। बाहर एक छोटी-सी खटिया भी थी, जहाँ वह चार बच्चों को एक साथ बिठा देती थी। चित्रा और दिवाकर इस मोहल्ले में नए आए थे। अभी तीन महीने पहले ही उन्होंने यह मकान बदला था। यहाँ चौदह बाई बारह का इकलौता कमरा था, जिसे उन्होंने ड्रॉइंग-कम-डाइनिंग-कम-बैडरूम बना रखा था। उस एक कमरे और छोटे-से लंबे किचन में जहाँ सिर्फ़ एक आदमी के खड़े रहने-भर की जगह थी, चित्रा-दिवाकर और मैथू जैसे अढ़ाई आदमी भी भीड़ नज़र आते थे। सुबह- सुबह, जब आठ बजे तक

सबको घर से निकलने की जल्दी होती थी, वे कमरे में चलते हुए एक-दूसरे से टकराते रहते थे। मैथू बार-बार उनके पैरों में आती थी। बस, इस नए मकान में एक यह आराम था कि छतें टपकती नहीं थीं, वरना जो मकान वे छोड़कर आए थे, वहाँ रसोई में ऐन खाना पकाते समय कड़ाही के भीतर छत से बरसात का पानी टपकता था। यह जानते हुए भी कि टपकनेवाला द्रव सिर्फ़ बारिश का पानी ही है, खाना खाते हुए कैसी उबकाई-सी आती थी। चूँकि यह रोज़मर्रा की बात थी, वह सब्ज़ी या दूध फेंक नहीं सकती थी, और बालों तथा पीठ पर तो उसे यहाँ-वहाँ गीला महसूस करने की आदत-सी हो गई थी। बैडरूम की दीवार इस क़दर भीगी थी कि तेज़ बरसात होने पर दीवार से छींटों की बौछार आती थी और पूरी दीवार भीग चुकने पर फ़र्श पर पानी बहना शुरू हो जाता था।

उस मकान में बरसात का मौसम पूरी तरह उन सब पर हावी रहता था। बरसात के उन तीन महीनों में लगातार मैथू बीमार रहती थी। अपने फ़्लैट में भी गीले फर्श पर चप्पलें चटखाते हुए चित्रा और दिवाकर बाथरूम की नाली से निकलते हुए लाल-लाल केंचुओं से आक्रांत रहते थे। उस मकान से निकलने के बाद उनके लिए किसी भी तरह के मकान में रहना आसान हो गया था, इसलिए उन्हें घर ढूँढ़ने में ज़्यादा दिक़्क़त नहीं हुई, पर दूसरे मकान में वे तीन- चार महीने ही चैन से रह पाए थे कि हर रोज़ घर लौटने पर उन्हें इस मकान के दरवाज़े पर नोटिस लगा हुआ मिलता था, जिसमें उनके वहाँ ग़ैरक़ानूनी तरीक़े से रहने के जुर्म को साबित किया जाता था।

वे बहुत आसानी से नोटिस का काग़ज़ फाड़कर कचरे के डिब्बे में फेंक देते थे, पर दो महीने गुज़रने के बाद आख़िर एक ईमानदार और कड़े सुरक्षा अफ़सर के आने पर उन्हें मयसामान सड़क पर आ जाना पड़ा। पंद्रह दिन किसी दोस्त के यहाँ गुज़ारकर आख़िर वे इस एक कमरे के मकान में आ गए, जहाँ और सारी सुविधाएँ थीं, सिवाय इसके कि पड़ोसी बड़े सुखी, समृद्ध और आत्म- केंद्रित थे। चित्रा और दिवाकर के घर के टूटते बर्तनों में उन्हें कोई दिलचस्पी नहीं थी। सबसे बड़ी असुविधा यहाँ मैथू के लिए थी, नज़दीक कहीं कोई शिशु या बाल- कल्याण केंद्र नहीं था और पूरे दिन के लिए नौकरानी मिलने या रख सकने का सवाल ही नहीं था। कई युक्तियाँ आजमा चुकने के बाद वे आख़िरकार ताराबाई को ही ढूँढ़ पाए थे, जो मैथू के अलावा और तीन बच्चों की आठ घंटे देखभाल करती थी और महीने के साठ रुपए लेती थी।

आज रविवार था और ताराबाई के यहाँ दूसरे बच्चे नहीं थे। अपने ही चार बच्चों में से किसी एक को वह दनादन धुन रही थी। जैसे ही उसने चित्रा को आते देखा, उस नाक बहाते, मरगिल्ले-से अधनंगे बच्चे की पीठ पर उसने आख़िरी धौल जमाई-'जाऊन मर तिकड़े! हलकट कुठला!' और नौवारी साड़ी से अपने गीले हाथ पोंछने लगी। फिर झेंपते हुए बोली, 'बाहर जाने का है, मेमसाब? छोकरी किदर?'

मैथू रास्ते के दूसरी ओर चुपचाप खड़ी थी।

'ये रे मैथू, उदर किदर जाता है? मेरे कू पैछानताइच नईं?'

बुलाए जाने पर मैथू धीरे-धीरे रास्ता पारकर आई और खटिया पर बैठ गई, आँखें लाल और गाल भीगे हुए। झोपड़ी के भीतर एकटक जैसे वह किसी शून्य में देखे जा रही थी।

'अरे, मम्मी से गुस्सा हय?' ताराबाई उसे गुदगुदा रही थी और वह चुप।

चित्रा ने पर्स से एक पैकेट निकाला और उसे थमाया-'ताराबाई, यह घर से कुछ खाकर नहीं आई है। अभी इसे नाश्ता करवा देना और खाने में सिर्फ़ चावल-दाल

देना। चार-पाँच बजे तक हम लोग आ जाएँगे।'

'ताराबाई, हमें ज़रूरी काम से जाना था...' दिवाकर ने जैसे सफ़ाई दी, फिर मैथू के गाल थपथपाए–'ओके, बेटा! हम जल्दी आ जाएँगे।'

मैथू ने न दिवाकर का हाथ झटका, न सिर घुमाया, दूसरी तरफ़ मुँह किए उसी तरह गुमसुम बैठी रही।

ताराबाई बोलती जा रही थी–'सेठ, तुम फिकिर नईं करना। अबी तुम लोग बस स्टॉप तक बी नईं पउँचा होएँगा, इधर मैथू का कथा-पुरान चालू हो जाएँगा–'अमारा मुलुक में इतना बड़ा घर, दादा-दादी, बुआ, मउशी–सब कितना अच्छा लोक! पपीता का झाड़, टोमैटोची रोप, सब अक्खा दिन चालू रएँगा। अपना तो भेजा खलास कर देगा ये छोकरी! मेमसाब, तुम फिकिर नईं करना, ये अबी ठीक हो जाएँगा।' ताराबाई की आवाज़ में चहक थी।

संभवत: इस चहक की तह में पाँच का कड़कता हुआ नोट था, जो शाम को उसे मिलनेवाला था। इतवार और छुट्टी के दिन बच्चा सँभालने के वह पाँच रुपए अलग से लेती थी, जो उसकी साठ रुपए महीने की पगार में शुमार नहीं थे।

चित्रा जानती थी कि मैथू अभी थोड़ी देर में सब-कुछ भूल-भालकर खेलने लगेगी, पर फिर भी उसे वहाँ छोड़कर लौटते हुए भीतर कहीं बहुत शिथिल और असहाय होती जा रही थी...।

बस की 'क्यू' में खड़े दोनों चुप बने रहे। बस जल्दी ही मिल गई और सीट पर बैठते ही दिवाकर ने चित्रा को कुरेदा–'अब तुम्हें क्या हो गया है? वह अभी ठीक हो जाएगी, उस दिन देखा नहीं, लौटे तो कूदती-फाँदती मिली कि इतनी जल्दी कैसे आ गए?'

'नहीं, मुझे अच्छा नहीं लग रहा। मैथू कभी-कभी एकदम बड़ों की तरह बिहेव करने लगती है...' चित्रा रुक-रुककर बोली, 'कैसे बिना आवाज़ रोती है, बहुत नाराज़ होती है तो गुमसुम हो जाती है...एक रविवार ही तो मिलता है उसे हमारे साथ रहने के लिए...ऐसा कौनसा ज़रूरी काम है हमें! तीस किलोमीटर दूर अँग्रेज़ी फ़िल्म देखने जा रहे हैं, यह ऐय्याशी नहीं, तो और क्या है!'

बस! यह सुनना था कि दिवाकर आगबबूला हो गए। चलती बस में एकदम खड़े होकर बोले, 'चलो, उठो घर चलो! साल-छमाही कभी घर से निकलो भी तो सौ सिरदर्द साथ चलते हैं।'

'बैठो-बैठो! बस में तमाशा मत करो।' चित्रा ने सँभाला–'अपने बच्चे के लिए कुछ महसूस करना भी ग़लत है?'

'नहीं, बस में बैठकर आप महसूस करिए। पहले सोचना था यह सब।' दिवाकर अपने तईं बड़बड़ाए चले जा रहे थे, 'ऑफ़्टरऑल, मैथू को बड़ा होना है। तुम तो ज़िंदगी-भर उसे बच्चा ही बनाए रहोगी। हमारे साथ हर जगह कैसे चल सकती है वह। शी हैज टु लर्न ऑल दिस।'

दिवाकर जले-भुने खिड़की से बाहर देखते जा रहे थे। चित्रा अपनी सीट पर बैठे-बैठे निढाल हो गई थी। दिवाकर की बातों में उसे सुबह की ख़राब चाय की बू आ रही थी। वह शायद अब भी कप-प्लेट तोड़ने वाली मन:स्थिति में थे। चित्रा ने सोचा था, आज वह दिवाकर से उसके ऑफ़िस के समाचार सुनेगी और अपने स्टाफ़ के झगड़े के बारे में बताएगी। पर उनमें संवाद की स्थिति ही नहीं रही थी।

इस नए मकान में आने के बाद वे दोनों व्यस्त हो गए थे। घर से चित्रा के स्कूल और दिवाकर के ऑफ़िस का फ़ासला बढ़ गया था। सुबह मुँह-अँधेरे पाँच बजे उठकर चित्रा के हाथ मशीनी अंदाज़ में रोज़मर्रा के काम निबटाते थे और तीन घंटों में तीन टिफिन के डिब्बे और अपने-अपने सामान से लैस होकर, दरवाज़े पर ताला डाल–दो चाबियाँ अपने-अपने साथ ले, वे तीनों घर से बाहर निकल पड़ते थे। शाम पाँच बजे तक चित्रा स्कूल से लौटते हुए सब्ज़ी-भाजी-ब्रेड ख़रीदती हुई, ताराबाई के घर से मैथू को साथ लाती हुई, घर पहुँचती थी तब सुबह का बिखरा घर समेटने और खाना बनाने-खाने तक वह बुरी तरह थककर चूर हो चुकती थी। आठ-नौ बजे दिवाकर ऑफ़िस की फ़ाइलों से लदे-फँदे घर लौटते थे और इसके साथ ही वह खाना टेबल पर लगा, बोझिल आँखों से सोने का इंतज़ार करती पाई जाती थी। इतवार को चित्रा की छुट्टी होती थी और सोमवार को दिवाकर की। दोनों की कॉमन छुट्टियाँ कम पड़ती थीं सो पिछले तीन महीनों में वे आपस में सिर्फ़ ज़रूरी बातें ही कर पाए थे। रोज़ की इस बँधी-बँधाई रुटीन में कुछ अनकहे-अनजाने कारणों से दिवाकर और मैथिली दोनों कुढ़ते रहते थे। चित्रा को इन दोनों मोर्चों को सँभालना होता था। ग़ुस्से और ज़िद में एक स्वभाव होते हुए बाप और बेटी में छत्तीस का रिश्ता था। दोनों हद दर्जे के असहनशील थे।

स्टेशन के भीतर घुसते ही पाँच नंबर प्लेटफ़ॉर्म को ख़ाली देखकर यह साफ़ हो गया था कि डबल फ़ास्ट ट्रेन छूट चुकी है। धीमी गाड़ी भी छूटने ही वाली थी और लोग बाहर झूल रहे थे। चित्रा को महिलाओं वाले 'लेडीज' डिब्बे में चढ़ाकर दिवाकर ख़ुद साथवाले डिब्बे

की भीड़ में धँस गए थे। दोनों के पास द्वितीय श्रेणी के क्वार्टरली पास थे और यूँ भी दोनों भीड़ में साथ यात्रा करने की मन:स्थिति में नहीं थे।

'इतवार को भी इतने लोगों को पता नहीं कहाँ जाना होता है।' चित्रा की अनुभवी आँखें पूरे डिब्बे को टटोल आईं–'यहाँ दादर से पहले बैठने की जगह नहीं मिलेगी...।'

...और जगह मिली भी दादर पहुँचकर ही, लेकिन परेल से ही अस्त- व्यस्त कपड़ों में एक थकी हुई महिला दो बच्चों को लेकर ऐन उसके सामने आ खड़ी हुई। एक बच्चा अँगुली पकड़े था और दूसरा भूख से बिलबिलाता हुआ माँ के सीने पर मुँह मार रहा था। उस महिला ने बैठने की जगह के लिए दोनों ओर याचना-भरी नज़रों से देखा, फिर खड़े-खड़े ही ब्लाउज़ खोलकर बच्चे को दूध पिलाने लगी। ट्रेन के हिचकोलों से वह महिला इधर-उधर लुढ़क रही थी, कभी अपने कपड़े सँभालती, कभी दोनों बच्चों को।

चित्रा से आख़िर बैठे नहीं रहा गया और वह कपड़े झाड़ती हुई उठ खड़ी हुई। वह औरत बड़े अकृतज्ञ-भाव से ख़ाली हुई सीट पर बैठ गई। उसने भी औरों की तरह यही समझा कि उसे अगले स्टेशन पर उतरना होगा, लेकिन यह चित्रा की कस्बाई प्रवृत्ति थी कि वह जब-तब बूढ़ी और बाल-बच्चों वाली महिलाओं को जगह दे दिया करती थी, वरना बंबई में उनके लिए कोई रियायत नहीं थी। लोकल का टिकट लेना हो या बस की क्यू हो, उन्हें अपने नंबर का इंतज़ार सबके साथ करना पड़ता था। महिलाएँ भी उसी अनुपात में रूखी और बेदिल थीं। घर से ऑफ़िस तक रोज़ ट्रेन में आने-जाने के समय में वे पर्स और थैले बुनती थीं, रोज़ मिलने वाली महिला सहयात्रियों से बेख़बर।

शुरू-शुरू में उसे अपना रोज़ दस किलोमीटर की दूरी तय करके स्कूल में पढ़ाने जाना बहुत अखरता था और वह हमेशा चौंकती थी, जब दिवाकर छुट्टी के दिन अचानक दोपहर को शहर में, जो घर से हमेशा पच्चीस-तीस मील के फ़ासले पर होता था, फ़िल्म देखने का प्रोग्राम बना डालते थे और वे दोनों चप्पलें पहन वैसे ही घर से निकल पड़ते थे। दिवाकर उसे चिढ़ाते कि वह बंबई में रहते हुए भी इस महानगर को अपने तीन वर्गमील के क्षेत्र में फैले कस्बे की ही नज़र से देखती है।

दिवाकर के ऑफ़िस में लोग ठाणा, कल्याण और उससे आगे पुणे से भी रोज़ काम करने के लिए आते थे और उनका अधिकांश दिन सफ़र में ही गुज़रता था। इन सबके मुक़ाबले उसे अपने-आपको वाकई ख़ुशक़िस्मत महसूस करना चाहिए था कि उसका स्कूल घर से सिर्फ़ दस किलोमीटर के फ़ासले पर था। लेकिन हर साल गर्मी की छुट्टियों में मैथू को लेकर अपने कस्बे में डेढ़ महीना गुज़ारते हुए उसे वहाँ के हर आदमी से ईर्ष्या होती थी। वहाँ का हर इंसान इतना संतुष्ट, सुखी और अवकाश-प्राप्त दिखाई देता था कि अपनी बंबई की भाग-दौड़ वाली मशीनी ज़िंदगी उसे कहीं भीतर से तोड़ती हुई महसूस होती थी। हर बार उस कस्बे में लौटने के बाद वह दिवाकर को बड़ी गंभीरतापूर्वक राय देती कि अब वह किसी और शहर में नौकरी तलाश करे। यह महानगर तो सिर्फ़ ग़रीबों के लिए दो जून की रोटी का जुगाड़ कर सकता है या व्यापारियों, पैसेवालों और अफ़सरों के लिए है। नौकरीपेशा निम्न-मध्यवर्ग यहाँ मरते दम तक अपनी परेशानियों से उबर नहीं सकता। दिवाकर भी दो-चार दिन अख़बारों की 'वाण्ट्स' देखते, अर्जियाँ भेजते, पर हफ़्ता बीतते-न-बीतते सब-कुछ फिर से 'फ़ास्ट', 'सिंगल फ़ास्ट' और 'डबल फ़ास्ट' लोकल की मशीनी रफ़्तार में जज्ब हो जाता।

उनसे अधिक इस रफ़्तार की आदी हो गई थी मैथिली, जो रोज़ सुबह वक़्त पर उठकर अपने-आप तैयार होती थी और अपनी सारी चीज़ें समेटने के बाद, मम्मी-पापा के पर्स, क़लम और रूमाल वगैरह तैयार कर देती थी। मुलुंड वाले मकान में वह तीन महीने बग़ैर किसी आया के अकेले काट चुकी थी। वहाँ मम्मी-पापा के जाने के बाद वह चाबियाँ सँभाल लेती, चंदाबाई के आने पर बाकायदा दरवाज़ा खोलती, उससे काम करवाती, मेज़ पर ढका हुआ खाना खाती, स्कूल, जो घर से सटा हुआ ही था, जाती और लौटकर चाबियाँ घुमाती हुई इस-उस पड़ोसी के यहाँ खेलती रहती। वहाँ चित्रा की पड़ोसिन बेहद भली और सीधी महिला थीं, घर और मैथिली, दोनों पर वह नज़र रखती थी। इस नए मकान में यह सुविधा और सुरक्षा नहीं थी। दिनदहाड़े यहाँ चोरियाँ होती थीं और मकान से बाहर आते ही खुली सड़क पर दो अंधे मोड़ थे, जहाँ आए-दिन दुर्घटनाएँ होती थीं। इस मकान में आने का एक बड़ा आकर्षण थी–सावित्री, जो चित्रा के साथ ही स्कूल में पढ़ती थी। चित्रा ने सोचा था, कभी वक़्त-ज़रूरत उनके पास मैथिली को छोड़ा जा सकेगा, लेकिन अब वह मिसेज शर्मा थी और शर्मा जी की अमीरी की बदौलत जब-तब घर में 'किटी पार्टी' आयोजित करती रहती थी। मैथू उनके यहाँ टी.वी. देखने के लालच में जाती, तो वह घंटे-भर में ही मैथू को घर वापस भेज देतीं।

इस मैथिली का जन्म एक छोटे-से कस्बे में अजीबोग़रीब शान-शौक़त के बीच हुआ था। अपने नाना और दादा, दोनों के परिवारों में वह अपनी पीढ़ी की पहली बच्ची थी और उसका नामकरण संस्कार बड़ी धूमधाम के साथ संपन्न हुआ था। दोनों परिवारों ने पास-पड़ोस में जी भरकर मिठाइयाँ बाँटी थीं, हिजड़ों का नाच करवाया था, जिनका प्रवेश ही उस गेट के अंदर निषिद्ध था। कस्बे के एक जाने-माने पंडित ने बच्ची की जन्मपत्री तैयार की थी और ग्रहों-नक्षत्रों की स्थिति समझाते हुए बताया था कि बच्ची पर जन्म से ही साढ़ेसाती चल रही है और लड़की अपने माँ-बाप दोनों पर ही भारी है। कभी माँ बीमार रहेगी तो कभी बाप।

पंडित जी को दिवाकर ने टोक दिया था—'आप यह सब सुनाकर ही हमें बीमार कर रहे हैं। नाम किस अक्षर पर है, यह बताइए।'

पंडितजी भड़क गए थे—'हमने तो बड़े-बड़े नेताओं की बेटियों का नाम रखा है, आप तनिक धैर्यपूर्वक ध्यान देकर कुंडली सुनिए। आपकी बच्ची का नाम तो बहुत ही सुंदर अक्षर से है—म से मेनका रखिए या माधवी!' उन दिनों वहाँ एक संस्थान द्वारा 'मैथिली-वनवास' नाटक खेला जाने वाला था और दादी ने बड़े चाव से अपनी पोती का नाम मैथिली रख दिया था।

पिद्दी-सी उस मैथिली को सवा महीने की उम्र में ही उस कस्बे से वनवास मिल गया था। चित्रा उसे बंबई ले आई थी, क्योंकि उसके स्कूल की छुट्टियाँ ख़त्म हो रही थीं। बंबई लौटने के बाद तीन दिन लगातार भाग-दौड़कर किसी तरह उसने एक चौदह साल की लड़की का बंदोबस्त किया था, अपने स्कूल जाने के बाद मैथू को सँभालने के लिए। छुट्टियों के बाद पहले दिन जब वह स्कूल गई थी, उसे यह अनुमान ही नहीं था कि वह अपने में इतना फ़र्क़ महसूस करेगी। स्कूल में दिन-भर उसका मन नहीं लगा और वह छुट्टी होने के इंतज़ार में खोई-खोई-सी बैठी रही। सारा दिन उसके जेहन में नन्हे-नन्हे कुलबुलाते हाथ-पैर और चमकती हुई आँखें घूमती रही थीं, जिनमें अभी मम्मी की पहचान भी नहीं उभरी थी। पहले दिन ज्यों ही मैथू का दूध पीने का वक़्त होता, वह अपने कपड़े भीगे हुए पाती। यह सिलसिला चार-पाँच दिन चलता रहा। उधर घर में मैथू अपनी बारीक आवाज़ में दूध के लिए रो रही होती, इधर चित्रा अपने भीगे हुए ब्लाउज़ से परेशान होकर अपनी छातियों को दबा-दबाकर गिलास में दूध निकालती और वॉशबेसिन में गिरा आती।

चौथे दिन उससे ज़ब्त नहीं हुआ और वहीं स्टाफ़ रूम में मेज़ पर माथा टिकाकर वह फूट-फूटकर बेतरह रोती रही। उसकी सहकर्मी मिसेज माथुर कारण जानने पर हँस दीं कि इसी स्कूल में काम करते हुए हमने तीन-तीन पैदा किए हैं। तुम्हारा पहला है न, इसीलिए परेशान हो! अरे, बच्चे को पैदा होते ही पाउडर के दूध की भी आदत डालो और स्कूल आने से दो-चार दिन पहले अपना दूध छुड़ा लो। इस सीधी-सी चीज़ के लिए तुम पाँच दिन से घुल रही हो, तभी मैं कहूँ कि मिसेज दिवाकर की सूरत को क्या हो रहा है, कहीं लड़के की उम्मीद में लड़की पैदा करने के ग़म में तो नहीं दुबली हो रही...?

धीरे-धीरे चित्रा और मैथू, दोनों को आदत हो गई थी। मैथू सिर्फ़ रात को चित्रा की माँग करती और दिनभर अपनी नई-नई आयाओं से खेलती रहती। पर उसकी सेहत हमेशा औसत बच्चे से कमज़ोर ही रही। घर की बदलती चारदीवारियों और नई-नई नौकरानियों के बीच वह बहुत धीरे-धीरे बड़ी हुई उसकी आदतें भी कुछ ख़ास आयाओं की दी हुई थीं, उसकी नाक बहती रहती और वह खीझती नहीं, न ही नाक पुँछवाने की ज़िद करती, पेशाब करने के बाद वह देर तक गीले में ही खेलती रहती, गोद में उठाते ही वह चित्रा की कमर के इर्द-गिर्द टाँगें चौड़ी कर देती, धूल-मिट्टी-रेत में वह आराम से खेलती और साफ़-सुथरे कपड़े और जूते-मोज़ों से सजे बच्चों को सामने पाकर वह सहमकर परे हो जाती...

इसी सबकी वजह से एक बार चित्रा ने तय किया था कि अपनी बच्ची की क़ीमत पर वह नौकरी नहीं करेगी। आया मैथू का पेट तो भर सकती थी, पर माँ के हाथों का स्पर्श और दुलार उसे नहीं दे सकती थी। यों भी जन्म के बाद से, माता-पिता के रूप में वे मैथू को पाउडर मिल्क के नियमित डिब्बों और रोज़ बदलती नौकरानियों के साथ एक लंबे, नाजायज़ एकाकीपन के अलावा क्या दे पाए थे? लेकिन लंबे महानगरीय अभ्यास के बाद वे जान चुके थे कि इस तरह के सवालों का एक लंबा सिलसिला था, जो सिर्फ़ मैथू के प्रति ग़ैर-ज़िम्मेदारी पर ही ख़त्म नहीं होता था।

ग़ैर-क़ानूनी मकानों, अनियतकालीन नौकरी के ग़लत समझौतों, ज़िंदगी की मशीनी रफ़्तार और आवश्यकताओं के क्रूर अर्थगणित ने उन्हें एक असहाय, अव्यवस्थित नागरिक से उठाकर एक निहायत व्यावहारिक और स्वार्थी इंसान में तब्दील कर दिया था। क्षणिक आवेश में नौकरी छोड़ देने का निर्णय चित्रा ने दिवाकर

को काफ़ी जोश के साथ सुनाया था, लेकिन ममता का ज्वर उतर जाने पर वह, दोनों की सम्मिलित आय में से अपने साढ़े चार सौ रुपए घटाकर किसी चमत्कारी मासिक बजट तक पहुँचने की कोशिश में सफल नहीं हो पाई थी। हर बार महानगर का अर्थशास्त्र उसे मात दे जाता था। दिवाकर ने कुछ भी कहने की ज़रूरत नहीं समझी थी और नौकरी छोड़ देने के ख़याल को चित्रा ने किसी फिजूल-से भावुक सपने की तरह स्थगित कर दिया था।

जब उन्होंने चौथा मकान बदला, तब मैथिली पौने चार साल की थी। यों मकान बदलने का कोई विशेष महत्त्व नहीं था, पर मुलुंड स्थित पिछले मकान की पड़ोसिन से मैथू को ख़ासा मोह हो गया था। वहाँ से आने के बाद मैथिली ने हफ़्ते-भर ठीक से खाना नहीं खाया। वह बार-बार ज़िद करती कि वह मकान क्यों छोड़ा, हमें तो आंटी के पास ही रहना था।

चित्रा ने तब अपनी हैसियत से बाहर जाकर अस्सी रुपए महीने पर एक क्रिश्चियन आया रखी थी। लेकिन दस दिन के बाद ही चित्रा ने देखा कि महीने-भर का राशन-पानी साफ़ था, आया के चेहरे की रंगत बदल गई थी और मैथू दुबली होती जा रही थी। उसने आया बदल दी और एक छोटी लड़की रख ली। पर वह लड़की दो दिन में ही बिदक गई कि वह सिर्फ़ उस घर में अक्खा दिन का काम करेगी, जहाँ टी॰वी॰ होगा। चित्रा-दिवाकर के पास न तो टी॰वी॰ ख़रीदने के लिए पैसा था, न टी॰वी॰ देखने के लिए वक़्त। मैथू भी समझदार हो चली थी। ख़ुद को बहलाने के उसने स्वयं ही कई साधन ढूँढ़ निकाले थे, कई शौक़ पैदा कर लिए थे। वह अपने-आपसे बातें करती, आइने के सामने खड़े होकर तरह-तरह के मुँह बनाती, अभिनय करती। जब-तब काग़ज़, कूची और रंगों के डिब्बे फैलाए बैठी रहती। स्कूल जाना तो उसने सवा दो साल की उम्र से ही शुरू कर दिया था।

नए मकान में आते ही मैथिली 'बड़े' स्कूल में जाने लगी थी। चूँकि स्कूल ताराबाई के घर से नज़दीक था, ताराबाई ही मैथू को स्कूल लेने-छोड़ने जाती थी पहले ही दिन स्कूल से लौटने पर मैथू ने मुँह फुलाकर चित्रा से कहा, 'मम्मी, आपने हमारा इतना गंदा नाम क्यों रखा?'

'गंदा नाम?' चित्रा चौंकी—'मैथिली, अच्छा नाम नहीं है क्या?'

'छि:, मैडम को तो हमारा नाम समझ में भी नहीं आता था। पूछ रही थी मेथीली का मतलब क्या होता है?' मैथू सचमुच नाराज़ थी—हमारी क्लास में सबके कितने अच्छे-अच्छे नाम हैं—कैथरीन, रम्या, सुरभि, लिलि, रुचि, रेशमा और एक सोनम है, राजुल है। रम्या कहती थी, मेथीली तो मेथीचा साग होता है। हम क्या मेथीचा साग हैं?'

चित्रा ने उसे समझाया—'बेटा, यह शिकायत तो हर बेटी को अपनी माँ से होती है, चाहे कितना भी अच्छा नाम रख लो। मैं जब छोटी थी न तो तुम्हारी नानी को कहती थी, मेरा नाम चित्रा क्यों रखा? जब आप बड़े होओगे तो अपना नाम बदल लेना।'

'आप बड़े नहीं हुए क्या?' मैथू पूछ उठी थी—'फिर आपने अपना नाम क्यों नहीं बदला, हम तो अपना नाम अभी बदलेंगे। हमारा नाम-....।' उसने सोचकर कहा—'चित्रा रख दो!'

चित्रा को हँसी आ गई। वह दो बच्चों वाली महिला, जिसे चित्रा ने बैठने की जगह दी थी, घबरा गई। चित्रा की नज़रें शायद उसी पर टिकी थीं। वह औरत एहतियात से अपने ब्लाउज़ के बटन बंद करने लगी कि शायद चित्रा उसका ब्लाउज़ ऊपर चढ़ा हुआ देखकर हँस रही है। कपड़े ठीक करने के बाद वह चित्रा को ग़ुस्से से घूरने लगी।

चर्चगेट पर दिवाकर साथवाले डिब्बे से कूदकर आते ऐसे लगे जैसे क़िला फ़तह कर आए हों। शायद मर्दों के डिब्बे में भी उतनी ही भीड़ थी। बस की नाराज़गी और बहस स्लो गाड़ी की सुस्त चाल में खो चुकी थी। थकान के बावजूद दोनों अब फ़िल्म देखने के लिए मानसिक रूप से अपने को तरोताज़ा महसूस करने की कोशिश में थे।

जिस आसानी से वे चर्चगेट पहुँच गए थे, लौटते हुए उन्हें उम्मीदें नहीं थी कि इतनी देर लगेगी पर माहिम और बांद्रा के बीच पाइपलाइन फट जाने से कई गाड़ियाँ कैंसिल हो गई थीं और बसों के लिए बहुत लंबी क़तार थी। आख़िरकार बस में सवा दो घंटे की यात्रा कर जब वे बोरीवली पहुँचे, तो भूल चुके थे कि जिस फ़िल्म को देखने के लिए वे साठ किलोमीटर का सफ़र तय कर चुके हैं, उसका विषय क्या था!

ताराबाई की झोंपड़ीवाली गली तक आते ही उनके क़दम धीमे हो गए थे। उन्हें उम्मीद थी कि मैथू दूर से ही उन्हें देख गली के नुक्कड़ तक भागी आएगी। उन्हें काफ़ी देर भी हो गई थी लौटने में। पर ताराबाई की खोली तक पहुँचकर भी उन्हें मैथू नहीं दिखी।

ताराबाई भीतर से निकलकर आई—'बोत देर

लगाया, मेमसाब! अइसा नईं करने का। मेरे कूँ भी रविवार को घर में काम होता हय। अबी देख लेने का मैथू को, तिकड़े बसली हय। छोकरी कुच्छ खाया नईं, पीया नईं, खेलने का बी नईं, बात बी नईं करने का। अब तुमीच देखो। ये रे माथू, काय झाला, ममी आली तुझी।'

मैथू पता नहीं कहाँ से निकलकर चुपचाप आई और चलने को तैयार खड़ी हो गई।

चित्रा ने ताराबाई को रुपए पकड़ाए तो वह नोट साड़ी में खोंसकर झिझकती हुई बोली, 'मेमसाब, एक बात बोलेंगा! तुम अबी और एक परदा करो, मैथू का साथ खेलने के वास्ते।'

'क्यों, तुझे और साठ रुपए तैयार करने हैं अपने?' चित्रा हँसी।

दिवाकर ने मैथू को गोद में उठाना चाहा तो उसने हाथ झटक दिया।

'अरे, सत्याग्रही बेटा, अभी तक नाराज़ हैं आप?' दिवाकर ने उसे थपथपाया। लेकिन वह चुपचाप नाक की सीध में चलती रही।

'तुम्हारी बेटी है आख़िर!' चित्रा बोली।

मकान का दरवाज़ा खोलते ही मैथू अंदर भागी और जूते उतारकर वैसे ही मोज़े पहने हुए पैर सिकोड़कर लेट गई। चित्रा ने देखा, वह सर्दी से काँप रही थी।

'इसकी तबीयत ठीक नहीं लग रही।' दिवाकर ने कहा और उसे रज़ाई ओढ़ा दी। मैथू लेटते ही सो गई। दस मिनट बाद चित्रा ने उसे छुआ, तो वह आग की तरह तप रही थी। उसके होठों पर कुछ अस्पष्ट-सी बुदबुदाहट भी थी।

'इसे तो बहुत तेज़ बुखार है!' चित्रा घबराई।

बुखार तेज़ी से बढ़ रहा था और जब चित्रा ने मैथू की बगल में थर्मामीटर लगाया तो पारा एक सौ चार को छू रहा था। जिस मैथू को वे सोया समझ रहे थे, वह दरअसल, सोई नहीं थी, बेहोश थी और उसी बेहोशी में वह धीरे-धीरे बुदबुदा रही थी। चित्रा ने ठंडे पानी में नमक घोलकर उसके माथे पर गीली पट्टियाँ रखनी शुरू कीं, तो दस मिनट बाद वह कुछ होश में आई।

चित्रा को उसने आँखें खोलकर देखा और जैसे ही उसकी आँखों में पहचान उभरी, उसने गीली पट्टी अपने माथे से उतार फेंकी और पलंग पर ज़ोर-ज़ोर से पैर पटकने लगी। अगले क्षण ही उसके हाथ-पैर ऐंठने और दाँत बजने शुरू हो गए। चित्रा ने ज़बरदस्ती मैथू को 'गार्डिनल' की आधी गोली खिला दी।

देर तक मैथू का बदन उसी तरह तपता रहा। चित्रा उसे दवा के दो डोज़ दे चुकी थी। दोनों बार पसीना आकर बुखार एक डिग्री नीचे उतरा, लेकिन आधे घंटे बाद ही फिर बुखार तेज़ था। दिवाकर दिनभर की थकान से बिना खाए-पिए, मैथू का छोटा-सा पलंग नीचे खींचकर लेट गए थे और थोड़ी ही देर में हल्के ख़र्राटों की आवाज़ हवा में उभरने लगी थी। दिवाकर की नींद गहरी हो, इससे पहले ही चित्रा ने उसे झकझोरा।

दिवाकर चौंककर उठे–'कैसी है मैथू?'

'पहले से कम है बुखार–टू प्वाइंट टू है। बार-बार पानी माँग रही है, बस।'

दिवाकर ने करवट बदल ली–'अच्छा, मैं थोड़ा लेट लूँ!'

'सुनो!' चित्रा ने फिर पुकारा–'कल का क्या करना है?'

'कल?' दिवाकर पलटे–'कल तुम छुट्टी ले लेना, और क्या!'

'सुनो तो!' चित्रा खीझी–'कल मैं छुट्टी नहीं ले सकती, तभी तो कह रही हूँ।'

'अब तुम जानो। मेरे ऑफ़िस में तो कल इंस्पेक्शन है।' दिवाकर नींद में थे–'अच्छा, सुबह देखेंगे। अभी कमर ज़रा सीधी करने दो।'

'सुबह नहीं, अभी ही तुम सुन लो। स्कूल में यूनिट टैस्ट चल रहे हैं और ख़ुर्शीद छुट्टी पर है, दोनों सैक्शन मुझे सँभालने हैं और मैंने पेपर भी सबमिट नहीं किया है। ख़ुर्शीद ऑनरेरी टीचर है, वह जब चाहे छुट्टी ले सकती है, सुन रहे हो?' चित्रा सुबह का मसला निबटाकर ही लेटना चाहती थी।

'ठीक है। मैं तुम्हारे स्कूल पेपर पहुँचाता हुआ जाऊँगा। तुम फ़ोन कर देना।' दिवाकर मुँह बिगाड़कर बोले, 'लेकिन मेरे घर रुकने के बारे में सोचना भी मत। दैट इज नैक्स्ट टु इम्पॉसिबल।'

'तुम समझते क्यों नहीं?' चित्रा की आवाज़ तेज़ थी–'तुम नहीं जाओगे तो नुकसान तुम्हारा ही होगा न। लेकिन मेरे न जाने से सवा सौ लड़कियाँ बैठी रह जाएँगी। इतनी ग़ैर-ज़िम्मेदार मैं नहीं हो सकती।'

मैथू बहुत थकी आवाज़ में बुदबुदा रही थी–'मम्मा, पानी!' चित्रा ने चम्मच से उसके मुँह में दो-तीन बार ही पानी डाला कि उसने सिर हिला दिया–'बस मम्मा!'

'आप फिर सो गए?' चित्रा ने दिवाकर को हिलाया–'बड़े ढीठ हो तुम!'

आख़िर तय हुआ कि सुबह चित्रा ही स्कूल जाएगी और कोई बंदोबस्त कर जल्दी वापस आ जाएगी। तब दिवाकर ऑफ़िस जाएँगे। इस नए मकान में आने के तीन महीने बाद उन्हें अच्छे पड़ोसियों की कमी बेहतर

खल रही थी।

रात-भर मैथू का बदन तपता रहा। उससे ढाई फुट दूर लेटी चित्रा को उसके बदन की आँच और गर्म साँसें छू रही थीं। दिवाकर बहुत थके हुए थे और ख़र्राटों के बीच-बीच में वह अचानक जागकर पूछ लेते थे कि मैथू कैसी है। रात-भर मैथू हर आधे घंटे के बाद पानी माँगती रही थी और चित्रा उनींदी-सी चम्मच उसके मुँह से लगाती रही थी।

सुबह पाँच बजे उठकर चित्रा ने पेपर तैयार किया। मैथू का बुखार देखा। अब भी एक सौ दो था। मैथू के लिए पानी उबालकर रखा। उसे लग रहा था कि ताराबाई के घर का पानी पीते रहने से ही उसे यह इंफ़ैक्शन हआ है। हर बार मैथू के बीमार होने पर उसे उबला हुआ पानी देने का सिलसिला हफ़्ते-भर ही मुश्किल से चल पाता था।

चित्रा ने घर के सब काम निपटाए, कुकर में चावल-दाल पकाकर रखा और जाने के लिए तैयार होने लगी। दिवाकर को उठाते हुए उसने देखा कि मैथू टुकुर-टुकुर उसकी ओर देखे जा रही है।

चित्रा उस पर झुकी–'कैसे हैं, बेटे, आप?' और उसने मैथू के माथे को चूम लिया। बुखार अब भी तेज़ ही था। मैथू को उसने दवा दी और कहा, 'हम जल्दी आ जाएँगे, बेटा! पापा से दवा ले लेना और थोड़ा-सा दूध भी पी लेना।'

दिवाकर मैथू के सिर पर हाथ रखे अख़बार पढ़ रहे थे।

चित्रा बाहर निकलने से पहले अपने बैग के काग़ज़ देख रही थी कि हल्की-सी आवाज़ आई–'मम्मी!' चित्रा ने देखा, मैथू काँपते हाथों से पैरों के जूते पहनने की कोशिश कर रही थी। उसका चेहरा दर्द से खिंच गया था।

'अरे बेटा, आपको कहाँ जाना है?' चित्रा उसके जूते हटाकर उसे सुलाने की कोशिश करने लगी, पर मैथू हाथ-पैर चलाने लगी।

'हम ताराबाई के घर जाएँगे तुम्हारे साथ।'

दिवाकर ने अख़बार फेंक एक ओर से मैथू को पकड़ा–'बेटे, आप बीमार हैं!'

मैथू चिल्लाने लगी–'नहीं, हम ताराबाई के घर जाएँगे!' और फिर अपने जूते लेने के लिए दिवाकर का हाथ झटककर पलंग से उतर पड़ी।

चित्रा-दिवाकर दोनों ने उसे थामा, पर वह हाथ-पैर पटकती, चीख़ती जा रही थी–'मम्मी, जाओ ऑफ़िस! पापा, जाओ ऑफ़िस। हम भी जाएँगे। हमारे जूते दो, मम्मी! हमको मत पकड़ो, पापा...'

और वह दुबारा बेहोश हो गई थी।

दिवाकर कमीज़ गले में डाले किसी डॉक्टर को ढूँढने निकले। चित्रा बार-बार घड़ी देख रही थी कि उसे टैक्सी ही लेनी पड़ेगी–यानी आठ रुपए पैंसठ पैसे!

सामने कैलेंडर था और मैथू को पाँच साल का होने में पूरे नौ दिन बाक़ी थे। हर साल अपनी इकलौती बेटी का जन्मदिन वे बड़ी धूमधाम से मनाते थे!

1702 **सॉलिटेअर, हीरानंदानी गार्डेन्स, पवई, मुंबई** 400076; **दूरभाष** : 022-40057872, **मो॰** 09757494505; **ई-मेल**–sudhaarora@gmail.com è sudhaaroraa@gmail.com

शोध
दिशा
के
आजीवन सदस्य बनिए
और पाइए हिंदी साहित्य निकेतन से
प्रकाशित पुस्तकें आधे मूल्य में।

शोध-दिशा के पाठकों के लिए एक विशेष योजना

शोध-दिशा का आजीवन सदस्यता-शुल्क 1500 रुपए है।

हिंदी साहित्य निकेतन की पुस्तकों की सूची पत्रिका के अंत में प्रकाशित की गई है।

कृपया पत्रिका के लिए अपना बैंक ड्राफ़्ट **'शोध-दिशा'** के नाम प्रेषित करें।

पुस्तकों के लिए अपना बैंक ड्राफ़्ट **'हिंदी साहित्य निकेतन'** के नाम से भेजें।

हिन्दी साहित्य निकेतन
16 **साहित्य विहार, बिजनौर (उ॰प्र॰)**
फोन : 01342-263232, 07838090732

कहानी

और मैना मर गई

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल

यह घटना मेरी पत्नी संगीता ने उस वक़्त सुनाई थी, जब वह नई नवेली दुल्हन थी और कुछ दिन पहले ब्याहकर इस घर में आई थी। मार्च की हलकी सर्दी की रात थी। दीवार पर लगी इलैक्ट्रॉनिक घड़ी में आवाज़ एक-एक क्षण के बारी-बारी गुज़रते जाने का अहसास दिला रही थी, मैंने दूधिया रोशनी में घड़ी की ओर देखा। एक बजने में सात मिनट शेष थे। संगीता जाग रही थी। अभी मेरी आँखों में भी नींद का खुमार नहीं उतरा था। हम दोनों गर्म शाल लपेटे बराबर-बराबर लेटे थे। कुछ पल ऐसे ही होते हैं, जब बातें समाप्त हो जाती हैं और कहने के लिए कुछ भी शेष नहीं रहता। जब दिल धड़कते हैं और ख़ामोशी शब्द बनकर बोलने लगती है। संगीता सरककर मेरे और निकट आ गई। मैंने उसके शरीर की गर्मी अपने भीतर प्रवेश करते हुए महसूस की।

संगीता एक ऐसी महिला थी, जो प्रेम में अपना पूर्ण अधिकार चाहती थी। प्रेम में किसी और की भागीदारी सहन नहीं थी उसे। पूरा कब्ज़ा चाहती थी वह। और जैसा कि होता है कि प्रेम में पूरा कब्ज़ा चाहनेवाले व्यक्ति प्राय: शंकालु प्रवृत्ति के होते हैं। उन्हें हर पल यह खटका लगा रहता है कि उनका प्रेमी किसी और तरफ़ न झुक गया हो। किसी और ने उसे अपनी ओर आकर्षित न कर लिया हो। ऐसे व्यक्तियों में निरंतर एक असुरक्षा-सी बनी रहती है। एक भय-सा बना रहता है कि कहीं कोई दूसरा उनके प्यार में भागीदार न बन जाए। मैं आरंभ ही में संगीता की इस प्रवृत्ति को भलीभाँति समझ गया था और प्रयास करता था कि ऐसा कोई कारण न आने दूँ, जो उसके लिए किसी तरह का संदेह पैदा कर सकता हो।

रात कुछ और आगे सरकी। मैंने देखा, अचानक मेरी पालतू बिल्ली कमरे की खिड़की से कूदकर मेरी गोद में आ बैठी। यह बिल्ली, जिसे हम सब परिवार के लोग गोल्डी कहकर पुकारते थे, मुझसे बहुत ज़्यादा हिल गई थी। मैंने नर्म-नर्म बालों वाली बिल्ली की पीठ पर प्यार से हाथ फेरा और उसे सहलाते हुए अपने और संगीता के बीच में लिटा दिया।

'कैसी प्यारी बिल्ली है, संगीता। है ना!' मैंने बस कहने के लिए कह दिया और पलटकर गोल्डी की तरफ़ देखा। मुझे उसकी भूरी-भूरी आँखों में प्रेम का सागर उमड़ता दिखाई दिया। भावनाओं के पास शब्द नहीं होते। पर वे शब्दों के बिना ही सब-कुछ कह देती हैं, सब-कुछ बता देती हैं, जो कुछ भी उनके भीतर होता है। भावनाओं की भाषा आँखों से व्यक्त हो जाती है, चेहरे से व्यक्त हो जाती है। प्रेम की भाषा को शब्दों की ज़रूरत नहीं होती।

मैंने देखा, संगीता बिल्ली के विषय में कोई दिलचस्पी नहीं ले रही है। इस समय एक विचित्र-सी उदासीनता उसकी आँखों में है। मैंने पूछा–

'क्यों डियर, तुम्हें पालतू प्राणियों में कोई रुचि नहीं है क्या?'

संगीता ने मेरे सवाल का कोई सीधा जवाब नहीं दिया। बोली, 'डैडी ने एक पहाड़ी मैना पाल रखी थी। वह हमारे सारे परिवार के लिए एक खिलौने जैसी थी। जिस व्यक्ति ने भी उसे शिक्षित किया होगा, बहुत ज़्यादा मेहनत की होगी, उसके साथ। सच कहती हूँ गौरव, वह इस तरह बोलती थी, जैसे सचमुच आदमी बोलते हैं। कितनी मीठी मधुर आवाज़ थी उसकी। डैडी ने एक सुंदर खुला-खुला-सा पिंजरा उसके लिए ख़रीदा। पाँवों में चाँदी के छोटे-छोटे छल्ले पहनाए। गले में सुनहरे मोतियों की छोटी-सी माला डाल दी। हमने उसका नाम तारा रखा था। घर के सारे लोग उसे तारा दीदी कहकर पुकारते थे।

मैंने बिल्ली को उठाकर छाती पर रख लिया। इस

समय बिजली की रोशनी में उसकी आँखें सचमुच तारों जैसी चमक रही थीं। उसने अपना सिर मेरे गर्म-गर्म चेहरे पर रख लिया था। मैं गोल्डी की नाक के आसपास खड़े मूँछ के बालों का स्पर्श अपने चेहरे पर महसूस कर रहा था। है तो विचित्र सी बात, लेकिन सत्य है। प्रेम की भावना न होती तो यह बाल मेरे लिए असुविधा का कारण बन सकते थे। इनकी चुभन मेरे लिए असहनीय हो सकती थी। इस समय यह मुझे अच्छी लग रही है। प्रेम की भावना में तो ऐसी चीज़ें भी अच्छी लगने लगती हैं, जो सामान्य स्थिति में स्वीकार नहीं की जा सकतीं। मैंने सोचा और गोल्डी के सिर को धीरे-धीरे सहलाने लगा।

संगीता अपने डैडी की मैना का ब्यौरा दे रही थी। 'तारा दीदी सुबह अँधेरे ही बोलना शुरू कर देती। उठो भ्राता जी, उठो भाभी जी, राम नाम जपो भोर का समय है। और जैसे ही घर में चहल-पहल होती, तारा दीदी सबको नाम लेकर प्रणाम करती, बारीक मीठी आवाज़ में उसका नमस्ते कहना कितना अच्छा लगता था हम लोगों को। सच तो यह है गौरव, तारा दीदी हमारे परिवार का सबसे प्रिय सदस्य थी। वह बच्चों से बतियाती, बड़ों से बतियाती। डैडी मैना का सबसे अधिक ध्यान रखते थे। समय पर खाना देते, समय से पानी देते, रात को उसका पिंजरा अपने बैड के पास टँगवा लेते। डैडी को मैना के बिना चैन ही नहीं पड़ता था।'

गोल्डी अपने अगले दोनों पाँव उठाकर मेरे पेट पर बैठ गई और अपनी गोल-गोल आँखों से इधर-उधर देखने लगी। मैंने संगीता से कहा, 'गोल्डी को भूख तो नहीं लगी है, हो सकता है, इसे भूख लगी हो। यह इधर-उधर देख रही है, जैसे इसे किसी खाने योग्य वस्तु की खोज में हो।'

संगीता ने मेरी बात का कोई उत्तर नहीं दिया। चुपचाप बैड पर लेटी रही। मैं बिस्तर से उठा और किचन से दूध ले आया, बिल्ली को पिलाने के लिए। संगीता यह सब देखती रही। बोली कुछ नहीं। गोल्डी ने दूध पिया। मैंने कपड़े से उसकी मूँछें साफ़ कीं और उसे बाहर जाने के लिए नीचे छोड़ दिया। पर गोल्डी बाहर नहीं गई। कमरे के चारों ओर घूमकर वापस लौट आई और उछलकर फिर मेरे बिस्तर में आ घुसी।

प्रेम में जो आकर्षण है, वह शायद ही किसी और चीज़ में हो। मैंने संगीता को संबोधित करते हुए कहा, 'चुंबक तो बस लोहे की चीज़ों को खींच पाता है। पर प्रेम

की भावना तो पशु-पक्षियों तक को मोहित कर देती है।' मैंने गोल्डी को उठाकर फिर अपने पास लिटा लिया। इसे मैं अपने एक मित्र के यहाँ से लाया था। तब यह आठ दिन की थी। सोहनी नाम की उसकी बिल्ली ने तीन बच्चे दिए थे। एक मैं ले आया था, दूसरा एक और मित्र ले गया था और तीसरा पैदा होने के तीसरे ही दिन निमोनिया से पीड़ित होकर मर गया था। मैंने गोल्डी को ऐसे लाड़ से पाला है, जैसे माँ अपनी संतान को पालती है।'

मैंने महसूस किया कि संगीता गोल्डी के विषय में कोई विशेष रुचि नहीं ले रही है। पशु-पक्षी प्रेम की महक इतनी जल्दी महसूस करते हैं, जितनी जल्दी शायद आदमी भी महसूस नहीं करता होगा। गोल्डी, तबसे अब तक एक बार भी संगीता की तरफ़ नहीं गई थी। उसकी बाँहों में आकर नहीं खेली थी। शायद उसे लग रहा था कि संगीता की बाँहों में उसके लिए वह अपनत्व नहीं है, जो मुझमें है। प्रेम की गंध पशु-पक्षी भी सूँघ लेते हैं।

गोल्डी शांत होकर मेरी बगल में लेट गई।

संगीता ने मुँह पर हाथ रखकर लंबी-सी जमुहाई ली।

'तुमने कभी मैना पाली है गौरव!' उसने मेरी ओर करवट लेते हुए पूछा। जवाब में 'न' सुनकर संगीता बोली, 'सबसे बुद्धिमान पक्षी है यह। बुद्धिमान भी और संवेदनशील भी।'

मुझे लगा कि संगीता पुनः अपने डैडी की मैना का क़िस्सा सुनाने को उत्सुक है। मैंने गोल्डी की ओर से ध्यान हटाकर संगीता की मैना में दिलचस्पी ली। कहा, 'मैना तो वह मैंने भी देखी है। विवाह के बाद केवल दो बार ही मैं तुम्हारे यहाँ गया हूँ। पहली बार जब मैंने घर में प्रवेश किया, बहुत मधुर बारीक आवाज़ में सुनने को मिला–'स्वागतम्-स्वागतम्।' मैंने चारों ओर घूमकर देखा, किसकी आवाज़ है। कुछ समझ में नहीं आया। तब माँजी ने बताया कि यह मनुष्य नहीं मैना बोल रही है। सच, मनुष्यों की तरह साफ़ शब्दों में बोल रही थी वह।'

'हाँ', संगीता ने उत्तर दिया। बोली, 'पर वह मैना जो तुमने देखी, वह नहीं थी, जिसकी चर्चा मैं कर रही हूँ, जिसे हम प्यार से तारा दीदी कहते थे, उसका तो बहुत दुखद अंत हुआ था, गौरव। अब भी वह घटना याद करती हूँ तो सिहर उठती हूँ।'

संगीता ने अपना गर्म-गर्म हाथ मेरे माथे पर रख दिया। लंबी साँस खींचकर बोली, 'एक दिन डैडी एक और मैना घर में ले आए। बताया कि बेचनेवाला इसकी बहुत प्रशंसा कर रहा था। इसे बड़ी मेहनत और चाव से पढ़ाया गया है। यह पूरे-पूरे वाक्य ही नहीं बोलती, गीत भी गाकर सुनाती है। डैडी ने बताया कि इसके गीत से मोहित होकर ही मैंने इसे ख़रीद लिया है। डैडी ने नई मैना का पिंजरा तारा दीदी के पिंजरे के निकट ही टाँग दिया।

'हमने मिलकर इस नई मैना का नामकरण किया। सबकी सहमति से इसका नाम मोहनी रख दिया गया। मोहनी आते ही सबके ध्यान का केंद्र बन गई। सारा परिवार उसकी ओर आकर्षित हो गया। बेचनेवाले ने डैडी को बता दिया था कि इसे कौन-कौन से गीत याद हैं। सो, कभी परिवार का कोई सदस्य, तो कभी कोई सदस्य मोहनी दीदी से गीत गाने की फरमाइश करता रहा। डैडी ने इसके गले में नन्हे-नन्हे मोतियों की माला डाली, पैरों में रिंग पहनाए, पूरा घर नए आनेवाले के स्वागत में लगा रहा। मोहनी से गीत सुनता रहा। किसी ने भी तारा दीदी की ओर ध्यान नहीं दिया। मानो जैसे भूल गए हों सब उसे।

'रात गए तक मोहनी से दिल बहलावा होता रहा।'

'खाने के बाद सब लोग सोने के लिए अपने-अपने बिस्तरों में चले गए। इस बीच तारा दीदी की सुध किसी ने नहीं ली। वह चुपचाप अपने पिंजरे से सब-कुछ देखती रही, कुछ बोली नहीं।'

'सुबह आँख खुली तो तारा दीदी की आवाज़ सुनाई नहीं दी। डैडी ने जाकर देखा तो तारा प्राण छोड़ चुकी थी। उसकी मृत देह पिंजरे के एक तरफ़ पड़ी थी।

'सबको आश्चर्य था कि तारा कैसे मर गई? वह बीमार नहीं थी। कुछ भी ऐसा उसके साथ नहीं हुआ था, जो उसकी मौत का कारण माना जा सकता। सभी अलग-अलग कारण बता रहे थे।

तभी उदास स्वर में डैडी बोले, 'सोतिया डाह ने मार डाला है इसे।' फिर वह मम्मी से बोले, कई पक्षी तो मनुष्य से भी अधिक संवेदनशील होते हैं, नीलिमा। तारा मर गई, क्योंकि उसे अपनी उपेक्षा सहन नहीं हुई। प्रेम का बँट जाना, छिन जाना, सहन नहीं हुआ। वह मर गई। कहते-कहते डैडी रुआँसे हो गए।'

मैं नहीं कह सकता कि संगीता ने यह घटना मुझे क्यों सुनाई थी। कोई असुरक्षा का भाव तो नहीं पल रहा था उसके भीतर। कौन जाने?

16 **साहित्य विहार**
बिजनौर (उ०प्र०)
मो० 07838090732

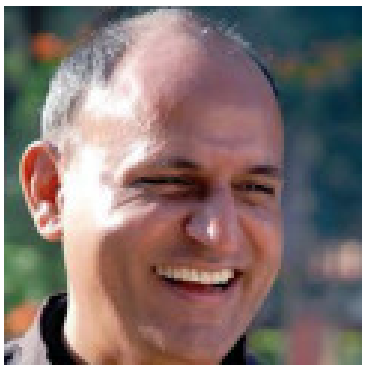

ईस्ट इंडिया कंपनी

पंकज सुबीर

वे कुल जमा नौ थे, इसमें अगर दो बच्चों को भी जोड़ दिया जाए तो कुल संख्या ग्यारह हो जाती है। हालाँकि वैसे तो रेल का सामान्य श्रेणी का पूरा डब्बा यात्रियों से ठसाठस भरा था, लेकिन उसके हिस्से में वे कुल ग्यारह थे, एक तरफ़ बैठे हुए पाँच और दूसरी तरफ़ चार, एवं साथ में दो बच्चे। इन ग्यारह में उसे अपनी मनपसंद खिड़की के पास की जगह मिल गई थी, एक बार उसे रेल में खिड़की के पास स्थान मिल जाए तो फिर उसे डब्बे के अंदर की दुनिया से कोई सरोकार नहीं रहता, उसका मन बाहर तेज़ी से दौड़ रहे खेतों, खलिहानों, नदी, तालाबों, बिजली टेलिफ़ोन के खंबों, और पर्वत मालाओं के साथ दौड़ने लगता है, और साथ में ताल मिलाने लगती हैं रेल की पटरियों पर थाप दे रही पहियों की आवाज़ 'सटक-सटक, पटक-पटक, पटक-पटक', 'सटक-सटक, पटक-पटक, पटक-पटक .....।'

आज उसे पहले-पहल तो खिड़की के पास स्थान नहीं मिला था, लेकिन अचानक ही खिड़की के पास बैठे भद्र महाशय से टीसी की कुछ चर्चा हुई, और वे अपना सामान उठाकर टीसी के साथ चले गए। वैसे भी वे तथा उनका लकदक कर रहा सामान दोनों ही सामान्य श्रेणी के डब्बे में कुछ असहज लग रहे थे। कदाचित उच्च श्रेणी में आरक्षण न मिल पाने के कारण वे यहाँ बैठ गए थे, ग़रीब लोगों के भारत से अवसर मिलते ही वे अपने वाले अमीर लोगों के भारत में चले गए, अपने हिस्से की खिड़की एक ग़रीब को देकर। उनके वहाँ से हटते ही उसने बिजली की फुर्ती से खिड़की के पास कब्ज़ा कर लिया, खिड़की के पास बैठते ही उसे लगा कि अब यात्रा कितनी ही लंबी हो जाए, कुछ फ़र्क नहीं पड़ने वाला, क्योंकि खिड़कियों के उस पार के एक पूरे संसार के साथ अब वो जुड़ गया है, यात्रा की यायावरता अब पूरी प्रकृति के साथ जुड़कर गतिमान होगी।

तो वे कुल जमा ग्यारह थे, कुछ घंटों के लिए मजबूरीवश बना एक सर्वथा अपरिचित लोगों का समाज, इस समाज में न कोई किसी के भूत के बारे में जानता है, न भविष्य के, केवल वर्तमान के कुछ घंटों को काटने के लिए ये समाज बना है। खिड़की के पास आसन जमाने के काफ़ी देर बाद वह डब्बे के अंदर आया। यहाँ आने से मतलब मानसिक रूप से अंदर आना है। बाहर की प्रकृति को छोड़ वह अंदर आया, तब उसे ये दस लोग दिखाई दिए, जो उसके समेत कुल ग्यारह थे और उपर वर्णित समाज की रचना कर रहे थे।

सामने की सीट पर कोने में छोटा परिवार सुखी परिवार विराजमान था, अत्यंत युवा ग्रामीण पति-पत्नी और उनकी दो छोटी-छोटी बेटियाँ। ये बेटियाँ इस बात का प्रमाण थीं कि यह परिवार अधिक दिनों तक छोटा परिवार सुखी परिवार नहीं रहेगा। अगर दो बेटे होते, तब शायद यह रह लेता, परंतु पति-पत्नी की अत्यधिक युवावस्था और दो बेटियाँ, छोटा परिवार सुखी परिवार के भविष्य पर प्रश्नचिह्न लगा रही थीं। इन चार के बाद सीट पर एक महिला अपनी युवा बेटी को लेकर बैठी थी, लड़की क्योंकि युवा थी, इसलिए ज़ाहिर है खिड़की के समीप बैठी थी उसके ठीक सामने। माँ-बेटी दोनों ही खाते-पीते घर की होने की बात को अपनी चर्बी के द्वारा सिद्ध करने का पूर्ण प्रयास कर रही थीं। यह था उसका विपक्षी दल का बैंच अर्थात् उसके ठीक सामने की सीट पर विराजमान उसके हिस्से का आधा समाज।

अब उसने अपने पक्ष में बैठे लोगों पर नज़र डाली। इस अवलोकन के दौरान उसे लगा कि विपक्ष की ओर नज़र डालना बहुत आसान है, आँखें उठाओ और देख लो, लेकिन अपने पक्ष को देखने के लिए बाकायदा प्रयास करना पड़ता है, बात वही सप्रयास और अप्रयास वाली है। अपनी बैंच के लोगों में स्वयं को छोड़कर उसने

बाक़ी लोगों को देखा, विपक्ष की ओर जब उसने देखा था तो कहीं कोई भी प्रतिक्रिया नहीं हुई थी, किंतु जब गरदन घुमाकर कुछ झुककर उसने अपने पक्ष में बैठे लोगों को देखा तो उन लोगों में, विशेषकर महिलाओं में, प्रतिक्रिया उनकी आँखों में साफ़ दिखाई दी, कुछ इस प्रकार की, कि देखो कैसे घूर रहा है।

ख़ैर, इस देखने-दिखाने की प्रक्रिया में जो कुछ नज़र आया वह इस प्रकार था—उसके ठीक पास दो महिलाएँ बैठी थीं, और उनके पास फिर एक महिला थी और फिर एक पुरुष बैठा था। अब इसे इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि तीन महिलाएँ और एक पुरुष बैठा था, लेकिन ऐसा इसलिए नहीं कहा जा रहा, क्योंकि दो महिलाएँ एक साथ थीं और तीसरी महिला और चौथा पुरुष एक साथ, जैसा उनके वार्तालाप से पता चल रहा था। उसके ठीक पास की दो महिलाएँ पारंपरिक भारतीय महिलाऐं थीं, जो संभवत: निम्न मध्यमवर्गीय परिवार से संबंधित थीं, पारंपरिक इसलिए क्योंकि उनकी बातचीत में पात्र भले ही रह-रहकर बदल रहे थे, लेकिन विषय एक ही था 'निंदा', और यह निंदा पूरी शिद्दत के साथ और पूरी ईमानदारी के साथ की जा रही थी, हालाँकि कभी-कभी यह निंदा निहायत कानाफूसी वाले स्तर पर पहुँच जाती थी, शायद उन महिलाओं का यह मानना था कि भले रेल के डब्बे की दीवारें हों या घर की दीवारें, दीवारें तो दीवारें हैं, और उनके कान होते ही हैं।

इन दो महिलाओं के उस तरफ़ जो पुरुष और महिलाएँ थीं, वे वास्तव में दो वृद्ध थे, एक सरदार जी और उनकी पत्नी। सरदार जी पूर्ण पारंपरिक वेशभूषा में थे और ऊपर एक कृपाण भी लटकाए हुए थे। पत्नी उनसे कुछ अधिक वृद्ध थी या फिर बीमार थी, ऐसा इसलिए क्योंकि सरदार जी थोड़ी-थोड़ी देर बाद स्वयं उठकर नीचे फ़र्श पर बैठ जाते थे, और उन दो लोगों वाले स्थान पर उनकी पत्नी अधलेटी हो जाती थी। ऐसा रह-रहकर हो रहा था।

पूर्ण सिंहावलोकन करने के पश्चात् उसने पुन: सामने नज़र डाली तो उसके ठीक सामने बैठी लड़की उससे नज़र मिलते ही बिला वजह ही शरमा गई। कुछ लड़कियों के साथ यही समस्या होती है, एक ठीक ठाक सा पुरुष जो थोड़ी दूर से देखने पर युवक होने का भ्रम उत्पन्न करता हो, उसकी उपस्थिति मात्र से ही इन्हें कुछ-कुछ होने लगता है। स्थिति यह हो गई कि कुछ ही देर में उसे 'कनखियों से देखना', 'दुपट्टा मुँह में दबाना', 'पैर के अँगूठे से ज़मीन कुरेदकर लजाना' जैसी घोर दुर्लभ घटनाओं का प्रत्यक्ष अवलोकन करने का सौभाग्य मिल गया। यद्यपि ट्रेन के उस घोर मरुस्थली फ़र्श पर

कुरेदने जैसा कुछ नहीं था, फिर भी महिलाएँ परंपराओं का पालन करने में अधिक विश्वास करती हैं। अब परंपरा पैर के अंगूठे से ज़मीन कुरेदने की है तो कुरेदना है। उधर कोने का छोटा परिवार सुखी परिवार अपने आचरण से स्पष्ट कर रहा था कि अब यह छोटा परिवार यात्रा समाप्त होने के कुछ समय पश्चात् ही छोटे परिवार का दायरा तोड़ देगा। यद्यपि दो बच्चियों के कारण दोनों खासे परेशान नज़र आ रहे थे।

तो इस तरह दो-दो के चार समूहों में ग्यारह सदस्यीय दल चर्चारत था, और इन सबके बीच एक बिला वजह की चर्चा उसके और सामने वाली लड़की के बीच भी हो रही थी, हालाँकि यह चर्चा निगाहों से होनेवाली चर्चा थी और पूर्णत: एकतरफ़ा थी। और इसी एकतरफ़ा चर्चा के कारण वह पुन: खिड़की से बाहर निकल गया और एक बार फिर नदी, तालाब, पेड़, पहाड़ों के साथ दौड़ने लगा। अच्छा होता है खिड़की के पास बैठना, क्योंकि खिड़की के पास बैठनेवाले को यही एक बड़ी सुविधा होती है, अगर डिब्बे या बस के अंदर का माहौल किसी व्यक्ति-विशेष अथवा घटना-विशेष के कारण रुकने-योग्य न हो रहा हो, तो शारीरिक रूप से अंदर उपस्थित रहकर मानसिक रूप से बाहर निकला जा सकता है, जो वो अभी कर रहा है।

काफ़ी देर तक वह खिड़की के बाहर दौड़ता रहा, तब तक जब तक बाहर अँधेरे ने नदी, पर्वत, तालाबों को लील नहीं लिया और बाहर दौड़ना उसके लिए पूर्णत: असहज नहीं हो गया। घना अंधकार बाहर फैला और वह अंदर लौट आया, अंदर आकर उसे पहली तसल्ली यह मिली कि उसका मूक साथी अपनी माँ के कंधे पर सिर टिकाए सोने या संभवत: ऊँघने की स्थिति में आ चुका था, बाक़ी सब-कुछ पूर्ववत था, हाँ एक लगभग अधेड़ उम्र के स्त्री-पुरुष, जो केवल इसलिए पति-पत्नी कहे जा सकते थे, क्योंकि ट्रेन भारत में थी, वे दोनों जहाँ दोनों सीटें ख़त्म होती हैं, ठीक उस स्थान पर आकर खड़े हो गए थे। पति पूर्णत: पारंपरिक भारतीय अधेड़ था, जिसके सर के बाल विलुप्त हो गए थे और पेट, तोंद नामक निर्जीव वस्तु में परिवर्तित हो चुका था। पत्नी उससे भी ज़्यादा भारतीय नज़र आ रही थी।

पति की आँखों मे कुछ पा लेने के लिए आतुरता नज़र आ रही थी। उसने देखा, कोने वाले सरदारजी की पत्नी फिलहाल लेटी हुई है, और सरदार जी सीट से नीचे बैठे ऊँघनेवाली मुद्रा में नज़र आ रहे थे। नवागत खड़े खड़ाए दंपती की निगाहें अधलेटी सरदारनी के द्वारा घेरे गए स्थान पर टिकी हुई थी, अगर सरदारजी पास नहीं बैठे होते, तो निश्चत रूप से वे अभी तक सरदारनी को उठा चुके होते। रात काफ़ी हो चुकी थी, लेकिन पब्लिक डब्बे में क्या रात और क्या दिन, क्योंकि बैठे-बैठे ऊँघना ही था, और वह भी लोहे की सख़्त सीटों पर। उसे केवल एक बात का डर था कि उसके ठीक सामने की ऊँघ टूट न जाए, नहीं तो फिर उसे कुरेदना, लजाना झेलना पड़ेगा, क्योंकि अँधेरे में खिड़की से बाहर भी तो नहीं जा सकता ।

सरदारनी अचानक कुछ कराही और उठकर बैठ गई, सरदाजी को इस बात का पता नहीं चल पाया कि सरदारनी उठकर बैठ गई है, वे पूर्ववत् ऊँघते रहे। सरदारनी को शायद कम दिखता है। वह उठकर चुपचाप बैठ गई। बस एक बार दुपट्टे को सँभालकर सर ढँक लिया। सरदारनी के उठते ही खड़े पति-पत्नी के बीच कुछ ऐसा हुआ, जिसे फ़िल्मी भाषा में आँखों ही आँखों में इशारा हो गया कहा जा सकता है। इस बात को केवल उसी ने देखा कि खड़े पति ने भोंहों को ऊपर उचकाकर गर्दन को सामने खींचकर सरदारनी के बैठ जाने से बने रिक्त स्थान की और इशारा किया, और जवाब में खड़ी पत्नी ने गिरगिट की तरह तीन बार स्वीकृति में सिर हिलाकर पति के हाथों से बैग ले लिया। यह पूरा घटनाक्रम उसके लिए दिलचस्प हो गया था, उसे अब डिब्बे के अंदर भी मज़ा आ रहा था ।

हाथों में बैग लेकर खड़ी पत्नी कुछ देर तक

आदमी और
कुत्ते की नाक
व्यंग्य-संग्रह

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल

मूल्य :
150 रुपए

हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर

खड़ी रही, फिर बिल्ली की तरह दबे पाँव उस रिक्त स्थान की ओर बढ़ी, दबे पाँव बढ़ने का कारण शायद यही था कि सरदारजी की नींद न खुल जाए, क्योंकि उस स्थिति में सरदारजी उस स्थान के पहले हक़दार होने के कारण बैठ जाते। लेकिन खड़ी पत्नी का साथ आज क़िस्मत दे रही थी, वह अपना बैग और लगभग बैग-सा ही ठसा ठसाया शरीर लेकर उस रिक्त स्थान पर बैठ गई, अर्थात् अब उसे बैठी पत्नी कहा जा सकता था। खड़ी पत्नी के बैठते ही उसकी सीट पर हल्की सी हलचल हुई, यह हलचल सरदारनी की तरफ़ से नहीं हुई, क्योंकि उन्हें तो कुछ सूझ ही नहीं रहा था, यह हलचल उसके ठीक पास बैठी दोनों पारंपरिक महिलाओं की ओर से हुई।

ये दोनों महिलाएँ अभी भी ऊँघ-ऊँघकर निंदा में लगी हुई थीं। रात हो जाने के कारण निंदा के विषय भी नींद या रात से संबंधित हो गए थे, मसलन फलानी को नौ बजे से ही नींद आने लगती है या फलानी सुबह के आठ बजे तक सोती रहती है। इन्हीं दोनों महिलाओं का यह निंदा का पारंपरिक कार्य तीसरी महिला अर्थात खड़ी पत्नी के ठीक पास आकर बैठते ही कुछ देर के लिए रुक गया। निंदा की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि प्रेम गली अति साँकरी जामे तीन महिला न समाए, जो कनफुसियाना, फुसफुसियाना दो महिलाओं के बीच मज़ा देता है, वह मज़ा तीन में कहाँ? यही कारण था शायद कि दोनों महिलाओं के बीच का वार्तालाप खड़ी पत्नी के बैठी पत्नी में बदलते ही थम गया, और दोनों कनखियों से बैठी पत्नी की ओर देख रही थीं।

इसी बीच सरदार जी की ऊँघ अवस्था समाप्त हो गई, उन्होंने उठकर जैसे ही अपने स्थान पर उक्त महिला को बैठे देखा तो तुरंत बोले, 'औ भैणजी, इत्थे तो मैं बैठा था।' महिला ने तुरंत अपने पति की ओर देखा, अधेड़ पति ने तुरंत सरदारजी को जवाब दिया, 'सरदारजी महिला हैं, कब तक खड़ी रहतीं, आप तो अच्छे बैठे ही हो नीचे।' सरदारजी वयोवृद्ध होने के साथ विनम्र भी थे, और फिर महिला के बैठने पर आपत्ति कैसे दर्ज कराते। कुछ नहीं बोले, मुड़कर सरदारनी से कुछ पूछने लगे। खड़ा पति और बैठी पत्नी दोनों मुस्कुरा रहे थे। उसने विरोध दर्ज कराना चाहा, फिर सोचा जाने दो अपना क्या गया, जगह तो सरदारजी की गई।

कुछ देर तक उसने खिड़की के बाहर अँधेरे में आँखें फाड़कर देखने का प्रयास किया, लेकिन बाहर कुछ सूझ ही नहीं रहा था। वह पुनः अंदर आ गया। उसके ठीक सामने अभी भी ऊँघ का माहौल था। वह भी ऊँघने लगा। काफ़ी देर तक वह ऊँघता रहा। उसकी इस निर्विघ्न ऊँघ के पीछे कई कारण थे, जैसे कि उसके ठीक सामने की निगाह चर्चाओं का ऊँघ जाना, छोटा परिवार सुखी परिवार की पारिवारिक चेष्टाओं का थम जाना और ठीक पास के निंदापुराण का भी ऊँघ जाना। काफ़ी देर बाद जब उसकी आँखें थोड़ी खुलीं तो उसने देखा कि सारे सहयात्री ऊँघवाली अवस्था से निंद्रावाली अवस्था में प्रवेश कर चुके हैं, उसके समेत केवल पाँच लोग ही जाग रहे हैं, सरदारजी, सरदारनी, बैठी पत्नी और खड़ा पति। बैठी पत्नी अपने खड़े पति की चिंता में जाग रही थी और सरदारजी, सरदारनी के कारण जाग रहे थे, अर्थात् भारतीय दांपत्य जीवन का अनूठा उदाहरण दोनों युगल बने हुए थे।

सरदारनी को बैठे रहने में परेशानी हो रही थी, शायद इसीलिए वह बार-बार पहलू बदल रही थीं। पहले वह थोड़ी-थोड़ी देर बाद अधलेटी हो जाती थीं, लेकिन खड़ी महिला के बैठी होने के बाद अधलेटे होने की जगह समाप्त हो गई थी। पत्नी को परेशान देख सरदारजी ने धीरे से पूछा 'की हुआ वीरांवालिए, लेटना है?' सरदारनी को कुछ समझ नहीं पड़ा, वह चुपचाप बैठी रहीं। सरदारजी सरदारनी की पीड़ा समझकर भी चुप रहे। इसी बीच उसने देखा कि बैठी पत्नी और खड़े पति के बीच पुनः कुछ आँखों ही आँखों में इशारा टाइप की चीज़ हुई, जिसके होने के बाद बैठी पत्नी के मुख पर कुछ इंच लंबी मुस्कुराहट फैल गई।

बैठी पत्नी ने आवाज़ में विनम्रता घोलते हुए सरदारजी से पूछा 'क्या बात है भाई साहब, भाभी जी से बैठते नहीं बन रहा है क्या?' सरदारजी ने सोचा, शायद ऐसा सीट ख़ाली करने के उद्देश्य से पूछा जा रहा है, इसलिए तुरंत जवाब दिया, 'हाँ भैणजी, तबीयत ख़राब है, ज्यादा देर बैठ नहीं पाती।' बैठी पत्नी ने कहा, 'अब तो सब सो ही गए हैं। मेरे पास एक मोटी दरी है, आप उसे दोनों सीटों के बीच बिछाकर इनको वहाँ लिटा दो, यहाँ इन्हें परेशानी हो रही है।' इतना कहकर वह अपने खड़े पति की ओर मुखातिब होते हुए बोली, 'सुनिए, आप ही थोड़ी जगह बनाकर ये दरी बिछा दीजिए, भाईसाहब बिचारे अकेले हैं।' स्वयं ही सलाह देकर उसकी स्वीकृति भी स्वयं देकर उसने बेग से दरी निकालकर पति की ओर बढ़ा दी। पति ने आज्ञाकारी बच्चे की तरह दरी हाथ

में ली और दोनों सीटों के बीच रखे सामान को सीटों के नीचे सरकाते हुए दरी को बिछा दिया।

दरी बिछते ही बैठी पत्नी ने तुरंत सरदारजी का बैग लेकर उसे दरी के एक सिरे पर तकिये की तरह रख दिया और सरदारजी से बोली, 'लीजिए भाईसाहब, भाभीजी को यहाँ लिटा दीजिए, यहाँ उन्हें आराम मिल जाएगा।' सरदारजी ने उठकर सरदारनी का हाथ पकड़कर उठा लिया, और नीचे बिछी दरी पर लिटाने लगे, इन सबमें खड़ा पति भी सहयोग प्रदान कर रहा था। सरदारनी के लेटते ही खड़ा पति भी तुरंत सरदारनी के उठने से रिक्त हुए स्थान पर बैठकर बैठा पति हो गया, सरदारजी ने उसे बैठते हुए देखा, लेकिन कुछ न बोले, बोलते भी कैसे, उन लोगों की दरी पर ही तो सरदारनी को लिटाया है। सरदारजी ने सरदारनी के पैरों के पास थोड़ी जगह बनाई और वहीं नीचे बैठ गए, बैठी पत्नी ने सरदारजी से कहा, 'यहाँ भाभीजी आराम से सुबह तक सो सकेंगी।' उत्तर में सरदारजी ने विनम्रता से केवल सिर हिला दिया।

रात काफ़ी बीत चुकी थी। ट्रेन पूरी रफ़्तार से भाग रही थी, उसे याद आया, बचपन में इतिहास के शिक्षक बार-बार उसे समझाते थे कि किस तरह ईस्ट इंडिया कंपनी भारत में आई, फिर धीरे-धीरे भारत में फैली और अंततः पूरे भारत पर कब्ज़ा कर लिया। तब उसे समझ नहीं आता था कि ऐसा कैसे हो सकता है, इतिहास का वह सबक आज जाकर उसे समझ में आया कि ईस्ट इंडिया कंपनी ने किस तरह भारत पर कब्ज़ा किया होगा। उसने बैठी पत्नी और ताजा-ताजा बैठे पति की ओर देखा उसे लगा वे दोनों यूनियन जैक में बदल गए हैं। वह धीरे से मुस्कुराया और आँखें बंद कर ऊँघने लगा। बाक़ी यात्रियों के साथ अब बैठा पति तथा बैठी पत्नी और सरदारजी एवं सरदारनी भी ऊँघने से निंद्रा की ओर बढ़ रहे थे, क्योंकि अब सभी संतुष्ट हो गए थे। यूनियन जैक सीट पर लहरा रहा था, और भारत नीचे दरी पर सो रहा था, वह भी धीरे-धीरे सो गया।

पी॰सी॰ लैब
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर (म.प्र.) 466001;
दूरभाष : 07562-405545
मो॰ 09977855399
ईमेल–subeerin@gmail.com
web site :www.subeer.com
blog: http//subeerin.blogspot.com

विनोद भृंग

जाड़े की धूप

मौसम ने बदला है कैसा ये रूप।
तन-मन को छेड़ रही जाड़े की धूप।
सूरज के नख़रों से
हो करके बोर
नींद भरी आँखों से
जगती है भोर
बदल गया दिन-भर का सारा प्रारूप।

पोखर के संग-संग
अलसाया ताल
कुन-मुन-कुन करती है
फूलों की डाल
कैसा है धरती का रूप ये अनूप।

थर-थर-थर काँप रहा
बरगद का गात
धूप अगर मिल जाए
बन जाए बात
या फिर मिल जाय उसे गरम-गरम सूप।

राघवकुंज, ब्रह्मपुरी कॉलोनी
निकट आर॰बी॰ पब्लिक स्कूल, पेपर मिल रोड
सहारनपुर (उ॰प्र॰) 247001; **मो॰** 09758350247;
ई-मेल–bhring52@gmail.com

टॉरनेडो

डॉ॰ सुधा ओम ढींगरा

'मॉम, मुझे आपके ब्यॉय फ्रैंड अच्छे नहीं लगते, आप दोस्त न बनाया करें।' डिनर के बाद क्रिस्टी ने बड़े प्यार से, लाड़ से जैनेफर के गले में बाहें डालते हुए कहा।

'फ्रैंड बनाना बुरी बात तो नहीं?' जैनेफर मेज़ पर से बर्तन उठाते हुए बोली।

'पर सोनल की मम्मी का तो कोई ब्याय फ्रेंड नहीं।' जैनेफर के पीछे-पीछे जाती क्रिस्टी बोलती गई।

'तुम्हें क्या पता, कोई होगा।' जैनेफर ने रात के खाने के बर्तन डिश वाशर में डालते हुए, अनमने मन से जवाब दिया।

'मॉम, मिसिज शंकर का कोई दोस्त नहीं, सोनल ने बताया है।' क्रिस्टी ने अपनी बात पर ज़ोर डाला।

'तो मिसिज शंकर एबनॉर्मल हैं। इस उम्र में साथ तो चाहिए ही। मिसिज शंकर और मेरा कोई मुक़ाबला नहीं।' जैनेफर ने डिश वाशर बंद करते हुए, उखड़े अंदाज़ में बात समाप्त की।

'मॉम, मैं मुक़ाबला नहीं कर रही, पर डैड की जगह कोई और ले...' जैनेफर ने क्रिस्टी की बात बीच ही में काट दी–'क्रिस्टी, बहुत बातें हो गईं, चलो अब चलकर सो जाओ। बैड टाइम?' जैनेफर उसे उसके कमरे की ओर ले जाते हुए बोली।

बिस्तर में अच्छी तरह क्रिस्टी को ढाँपकर, उसने उसके गालों को सहलाया और फिर स्नेह से चूम लिया–'गुड नाइट, स्वीट हार्ट, रात की प्रार्थना करना नहीं भूलना।'

'मॉम, स्टोरी।'

'नो, स्वीटी आज नहीं, कल मुझे सुबह जल्दी जाना है। तुम भी सो जाओ। फिर सुबह तुमसे उठा नहीं जाता।' कहते हुए नाइट बल्ब जलाकर, वह कमरे से बाहर आ गई।

वैसे तो क्रिस्टी दस वर्ष की है। अमरीकी परिवारों के बच्चे इस उम्र में काफ़ी कुछ समझने लगते हैं। ख़ासकर लड़कियाँ जल्दी परिपक्व हो जाती हैं। क्रिस्टी में अभी भी बालपन की सरलता और मासूमियत है। उसकी समझ में जैनेफर की बात नहीं आई। 'एबनॉर्मल' शब्द उसकी बुद्धि में अटक गया।

डैड के जाने के बाद, क्रिस्टी हर रात अपनी कल्पना में एक दुनिया बसाती है, और फिर उसी की सुखद अनुभूतियों में विचरण करती है। उसके डैड सोने से पहले, उसे कहानी सुनाया करते थे और अब वह स्वयं ही हर रोज़ एक नई कहानी गढ़ती है और खुद को सुनाते-सुनाते सो जाती है।

पहले उसने डैड से बात की–'डैड, मॉम के पास मुझे कहानी सुनाने के लिए समय नहीं है, पर जॉन अंकल के लिए है। उनके साथ फ़ोन पर बातें कर रही हैं। मुझे आवाज़ आ रही है। आपके जाने के बाद वे बहुत

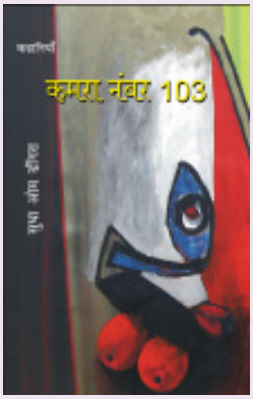

कमरा नं॰ 103

कहानी-संग्रह

डॉ॰ सुधा ओम ढींगरा

मूल्य :
सजिल्द 150 रुपए

हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर

बदल गई हैं।'

फिर क्रिस्टी प्रार्थना करने लगी–'जीसस, मेरी मॉम को एबनार्मल कर दे, मुझे उनके बुआय फ्रैंड अच्छे नहीं लगते।'

धीरे-धीरे उसकी कल्पना आकार लेने लगी–जीसस ने उसकी मॉम को एबनार्मल कर दिया है। वे स्कूल से उसे घर लेकर आती हैं। फिर खाने को पास्ता देती हैं। क्रिस्टी को वह पास्ता बहुत स्वादिष्ट लगता है, यम्मी, आसम....वह उसका स्वाद लेती है। उसकी मॉम उसे देख-देखकर खुश होती हैं।

'क्रिस्टी, मेरी प्यारी क्रिस्टी' कहकर वे प्यार से उसे बाँहों में भर लेती हैं। अब वे उसका बैक-पैक खोलती हैं। होमवर्क देखती हैं। बड़े स्नेह से उसके गाल पर 'किस' देकर कहती हैं–'माई एंजल, जाओ अब बाहर जाकर खेलो।' क्रिस्टी खिल उठती है।

'सोनल की मम्मी तो रोज़ ऐसा करती हैं, वे एबनार्मल हैं। अब उसकी मॉम भी एबनार्मल हो गई हैं।' अपने-आपसे बात करती, कल्पना का आंनद लेती और प्रसन्न मुद्रा में ही वह गहरी नींद में चली गई।

जैनेफर की तीखी आवाज़ ने उसे जगाया–'उठ देर हो रही है, जल्दी कर।'

आवाज़ से ही क्रिस्टी भाँप गई, कल फिर जॉन अंकल से मॉम का झगड़ा हुआ है, तभी मॉम चिड़चिड़ी हैं। क्रिस्टी चुपचाप अपने दैनिक काम करने लग गई। सुबह-सुबह मॉम डाँटें, उसे अच्छा नहीं लगता। सारा दिन उसका मूड ख़राब रहता है और सहेलियों से भी झगड़ा हो जाता है। रात को ही वह नहाई थी। ब्रश करके, कपड़े बदलकर, आधे घंटे में तैयार होकर, वह नीचे रसोई में आ गई।

जैनेफर ने बेहद ख़ामोशी से उसे लंच बॉक्स पकड़ाया। ऐसे समय में क्रिस्टी भी ज़्यादा बात नहीं करती। छोटी उम्र में ही, कई बातें वह समझने लगी है। जैनेफर ने उसे दरवाज़े तक छोड़ा और वह घर के आगे आकर खड़ी हो गई, जहाँ से स्कूल बस उसे रोज़ स्कूल ले जाती है।

क्रिस्टी बस में सारे रास्ते सोचती रही–'काश! उसकी मॉम सचमुच वंदना आंटी की तरह एबनॉर्मल हो जाएँ।' पर स्कूल पहुँचकर, सोनल को देखते ही, वह सब-कुछ भूल गई।

सोनल और क्रिस्टी किंडरगार्डन से सहेलियाँ हैं, दोनों में बहुत समानता है, दोनों का जन्म रैक्स हस्पताल में हुआ। क्रिस्टी सोनल से एकदिन बड़ी है, अभी दसवें वर्ष में प्रवेश किया ही था कि क्रिस्टी के डैडी पीटर की कार एक्सीडेंट में मृत्यु हो गई और सोनल के डैडी के ब्रेन टूमर का पता चला। छह महीने के भीतर ही सोनल के डैडी व्योम इस दुनिया से चले गए।

दोनों अपने-अपने डैडी की अनुपस्थिति से आए शून्य से जब विचलित होतीं, तो स्कूल में लंच के समय उनकी बातें करतीं–'सोनल पता है, जब मैं साइकल चलाती थी, तो डैडी मेरे साथ-साथ भागते थे। अगर गिर जाती, एकदम से पकड़ लेते, मुझे चोट नहीं लगने देते थे?'

'क्रिस्टी, मेरे डैडी ने तो झूले के नीचे, ख़ूब सारी रेत बिछा दी थी। जब मैं झूले पर बैठती थी, बाँहें फैलाकर खड़े रहते थे, उन्हें डर लगता था कि कहीं मैं झूले से गिर न जाऊँ।'

लंच में, क्रिस्टी को, सोनल का आलू का पराँठा बहुत अच्छा लगता। वह अपना सैंडविच वहीं गारबेज में फेंक देती और सोनल का पराँठा खाती। वंदना क्रिस्टी के लिए भी एक पराँठा लंच बॉक्स में डाल देती। जैनेफर को जब पता चला, उसे अच्छा तो नहीं लगा, पर वह सोनल और क्रिस्टी के प्यार, उनकी दोस्ती को स्वीकार कर चुकी थी, इसलिए कुछ बोली नहीं।

गोरी-चिट्टी बेहद ख़ूबसूरत जैनेफर ने पीटर की मौत के डेढ़ महीने बाद ही डेटिंग शुरू कर दी। क्रिस्टी बौखला गई। वह अपने डैडी की जगह किसी और को नहीं देखना चाहती। उसकी पढ़ाई प्रभावित होने लगी। क्रिस्टी की टीचर मिसिज रोज़वेल्ल ने कई बार जैनेफर को पत्र लिखा, क्रिस्टी की पढ़ाई के बारे में सूचित किया। जैनेफर को स्कूल भी बुलाया। उसे कुछ समझ नहीं आ रहा है कि वह क्या करे ? कैसे उसे सँभाले? क्रिस्टी अपने डैडी को बहुत याद करती, बिना बात के ज़िद करती और कभी रोती, उसे जैनेफर के साथ की ज़रूरत है और जैनेफर के पास समय की ही कमी है। वह वालमार्ट में सुपरवाइजर है, पर वेतन घंटों के हिसाब से मिलता है। गृहस्थी के ख़र्चे, मकान का किराया, बिजली और पानी का बिल देने के लिए उसे ओवर टाइम करना पड़ता है। जैनेफर और पीटर का पूरा परिवार डरहम में रहता है, पर उसकी मदद कोई नहीं करता। पढ़े-लिखे न होने की वजह से छोटी-मोटी नौकरियाँ कर गुज़ारा कर रहे हैं। एक-दूसरे का साथ देने के लिए, उनके पास न समय है, न पैसा। जैनेफर और पीटर दोनों की माँएँ अकेली थीं। उनका बचपन बड़ा ही संघर्षमय बीता था। वैसा बचपन वह क्रिस्टी को नहीं देना चाहती। क्रिस्टी को स्कूल के बाद डे केयर में जाना ही पड़ता। क्रिस्टी के

साथ शाम को घर में होते हुए भी, उसे घर खाने को आता है। उसे पुरुष साथ की इच्छा होती। उसे पीटर की कमी खलती। जब भी वह किसी पुरुष मित्र को घर बुलाती, तो क्रिस्टी को उसके कमरे में भेज देती। क्रिस्टी अकेली हो जाती, वह या तो टी॰वी॰ पर सैस्मीं स्ट्रीट देखती या स्कूबी डूबी डू। कई बार वह अपनी दो बॉर्बी डॉल को सोनल और क्रिस्टी बनाकर, अपने आपसे बातें करती।

वह उदास रहने लगी और अपनी सब बातें सोनल को बताती। सोनल का मन क्रिस्टी के लिए दु:खी हो जाता और वह माँ के पास रोती। वंदना से सोनल का दु:ख देखा नहीं गया, उसने बहुत सोच-विचार के बाद जैनेफर से बात की और स्कूल के बाद, डे केयर की बजाय, वह सोनल के साथ उसे घर लाने लगी। शाम को, काम से घर आते समय, जैनेफर सोनल के यहाँ से उसे वापिस अपने घर ले जाती। वंदना के स्नेह की बौछारों तले क्रिस्टी की उदासी दूर हो गई और वह खुश रहने लगी।

गेंहुँए रंग की पतली-दुबली वंदना, आई॰बी॰एम॰ में मैनेजर है और व्योम डायरेक्टर थे। व्योम के देहांत के उपरांत, कंपनी ने उसे, घर से काम करने की छूट दे दी थी। दोनों आई॰टी से जुड़े हुए थे। आई॰आई॰टी कानपुर में ही तो दोनों की दोस्ती हुई थी। दोस्ती कब प्यार में बदल गई, पता ही नहीं चला। दोनों ने एक-दूसरे को हृदय की गहराइयों से चाहा था। कई वर्षों की दोस्ती के बाद शादी की थी। व्योम के बाद वंदना टूट गई। कई दिनों तक वह बहुत रोई, तड़पी, बिलखी, चिल्लाई पर व्योम को वापिस न ला पाई। वह स्वभाव से कर्मठ है और सोनल का चेहरा देखकर वह फिर हिम्मत से खड़ी हो गई। वंदना के माँ-बाप चाहते थे कि वह भारत वापिस आ जाए। उन्हें चिंता थी, अमेरिका में सोनल को वह अकेली कैसे पालेगी? वंदना ने अमेरिका में रहना ही उचित समझा, फिर व्योम का बड़ा भाई शुभम्, भाभी सुमन और माँ-बाबूजी भी तो यहीं चौपल हिल में रहते हैं। वंदना को उनका बड़ा सहारा है।

सहारा कितना भी हो, अमरीकी जीवन-शैली में रोज़मर्रा का संघर्ष तो उसे अकेले ही करना पड़ता। संध्या होते ही उसे कुछ होने लगता, वह बेचैन हो जाती। रात को उसके शरीर में हलचल होती, संवेदनाएँ विचलित करतीं। पुरुष संसर्ग की इच्छा उसे कभी महसूस न होती, पर भीतर कुछ मथता, सिहरन-सी होती... हालाँकि व्योम उसके रोम-रोम में रम चुका है। उसका ध्यान ही उसे शांत कर देता, प्रेम की चरम परिधि पार कर व्योम उसकी आत्मा में समा चुका है, व्योम से जुड़े एक-एक पल को, उसने अपने भीतर सँजोकर सहेज लिया है।

ऐसे भावुक क्षणों में उसे कई बार जैनेफ़र की बात याद आ जाती–'मिसिज शंकर एबनॉर्मल है?' क्रिस्टी उसे बता चुकी थी।

अगले ही पल वह मुस्कुरा पड़ती–अमरीकी लोग,

प्रीत की आंतरिक समाधि को कहाँ समझ सकते हैं? जहाँ शारीरिक इच्छा गौण हो जाती है, दैहिक सुख के आगे वे सोच ही नहीं पाते? वह भी अपने ही भीतर समाई प्रेम की पराकाष्ठा और उससे उत्पन्न हुए भावों को कब समझ पाई थी, जब तक उसने लियो बुस्कालिया की 'लव' और डॉ॰ जोसफ़ मर्फ़ी की 'दी पावर ऑफ़ यौर सब कांश्यस माइंड' नहीं पढ़ी थी। व्योम उससे अलग कब था? वह व्योम ही तो बन चुकी थी। कभी-कभी वंदना सोचती, शायद श्याम भी मीरा में ऐसे ही समाए होंगे। आंतरिक समन्वय प्रेम की ज्योति प्रज्वलित कर देता है, उसकी लौ पूरा बदन प्रेममय कर देती है, फिर बाहरी सुख की इच्छा नहीं रहती। उसने जैनेफ़र को ये पुस्तकें पढ़ानी चाहीं, उसने उन्हें देखकर दूर रख दिया। उसे सिर्फ़ एक-दो ही शौक़ थे, परिवार की शिकायतें और डेटिंग की बातें करना।

क्रिस्टी के मिडल स्कूल जाने तक, जैनेफ़र ने कई पुरुषों से डेटिंग की, जोन, जॉन, स्टीव, माइकल... क्रिस्टी अब इन सब बातों की आदी हो चुकी है। जैनेफर जब किसी ब्याय फ्रेंड को घर लाती, क्रिस्टी सोनल के घर चली जाती। वह तो वैसे भी ज़्यादातर वहीं रहती। क्रिस्टी सोनल के साथ भारतीय फ़िल्में देखने लगी और शाहरुख़ और सलमान ख़ान की फ़ैन हो गई। बॉलीवुड संगीत उसे बहुत पसंद आने लगा। 'हिंदू सोसाइटी' और सांस्कृतिक संस्था 'हम सब' के कार्यक्रमों में वह सोनल के साथ फ़िल्मी गीतों पर नाचने भी लगी।

जीवन की भागदौड़ और लड़कियों को एक जगह से दूसरी जगह ले जाने, लाने में वंदना कई बार थक जाती। काम का बोझ जब बढ़ जाता और वह अपने काम की मीटिंग्स को छोड़कर निकल न पाती तो बाबूजी लड़कियों को स्कूल से घर ले आते। उन्हें नाश्ता खिलाकर फिर कभी कत्थक, कभी ताइक्वांडो, कभी पियानो, कभी बैले सिखाने ले जाते।

वंदना की आँखें सजल हो जातीं, जब बाबूजी उसके सिर पर हाथ रखकर कहते–'बेटी थक गई आज, चल मैं अपने हाथ से चाय पिलाता हूँ।' और मसालेदार चाय का एक गर्मागर्म कप उसे पीने को देते। उसके अपने पिताजी ने तो चारों बहनों की ओर कभी देखा भी नहीं था, जब तक उसकी माँ ने बेटा नहीं जना। उसके बाद ही वह मुस्कुरा पाई थीं और उसके साथ ही मुस्कुराई थीं, वे चारों बहनें। वह माँ-बाप के पास शायद इसलिए भी नहीं जाना चाहती थी कि उसके भी लड़की है।

बाबूजी अक्सर मिताली द्वारा गाई, उसकी मनपसंद ग़ज़ल–'वक़्त ने तन्हा कर डाला तो ग़म न कर...' लगा देते, वंदना के चेहरे की उदासी छँट जाती और बाबूजी मुस्कुरा पड़ते।

अमरीका में समय बीतता नहीं, भागता है। देखते-ही-देखते लड़कियाँ हाई स्कूल में चली गईं। एक दिन वंदना जब लड़कियों को स्कूल से लेने गई। कार में बैठते ही क्रिस्टी ने बड़ी उमंग के साथ कहा–'वंदना आंटी, जय पटेल ने आज सोनल को डेट पर जाने के लिए पूछा।'

यह सुनते ही वंदना के पैर ब्रेक्स पर ज़ोर से पड़े, अगर लड़कियों ने सीट बैल्ट न बाँधी होती तो उनके सिर सामने की सीटों पर लगते। वंदना विचलित हो गई थी। क्या लड़कियाँ इतनी बड़ी हो गई हैं ! कुछ ही क्षणों में उसने अपने आपको सँभाला–'गर्ल्स, आर यू ओ॰के॰ सॉरी।' वंदना अपनी जिज्ञासा रोक नहीं पाई, सहज होकर पूछ ही लिया–'फिर सोनल ने क्या कहा?' सोनल चुप रही। क्रिस्टी ने चहकते हुए कहा–'आंटी, मना कर दिया, हमें याद है, आपने कहा था–नो डेटिंग इन हाई स्कूल। एस॰ऐ॰टी॰ के स्कोर बढ़िया लेने हैं, ताकि आई वी लीग (उत्तम कॉलेज) में दाखिला मिल जाए।' वंदना ने राहत की साँस ली।

रात-भर वंदना सो नहीं सकी, उसे व्योम की बहुत याद आई। सोनल को उम्र की इस वय:संधि में वह अकेली कैसे सँभाल पाएगी? रो पड़ी थी वंदना। तभी व्योम की बात कानों में गूँजी–'जब जीवन में कोई विकल्प न रहे, परिस्थितियों को सहर्ष स्वीकार कर लेना चाहिए।'

'कहना बहुत आसान है। तुम तो कहकर चले गए, मेरे लिए कितना मुश्किल है–तुम क्या जानो?' वंदना बुदबुदाई और आँसुओं को पोंछने लगी।

उसका सिर दर्द से फटा जा रहा था। एडविल की गोली ली और सोचने लगी–सोनल का सोलहवाँ जन्मदिन आनेवाला है, शादी की तरह तैयारी करनी पड़ती है। वैसे तो जेठ-जेठानी ने हॉल बुक करवा लिया था, केटरर से भी बात कर ली थी। पर तब भी काम बहुत हो जाता है। अच्छा कल जैनेफर से बात करूँगी। सजावट के लिए मंजू निगम को कॉल करना है। एडविल ने असर दिखाना शुरू कर दिया, उसकी आँखें भारी होनी शुरू हो गईं, सोचते-सोचते वह नींद के आगोश में चली गई।

सुबह वंदना का मन उदास और चित्त अस्थिर था, पर जन्मदिन की तैयारी ने उसका ध्यान बँटा दिया।

अंत में वह दिन भी आ गया, जिसका सबको इंतज़ार था। जन्मदिन की पार्टी शुरू हो गई है ..डी॰जे का

मद्धिम संगीत चल रहा है। क्रिस्टी और सोनल ने लहँगा पहना है। जैनेफर पंजाबी सूट पहनकर, अपने दोस्त केलब के साथ आई। लोग धीरे-धीरे आ रहे हैं। क्रिस्टी दो दिन से सोनल के घर पर ही है। वंदना और सोनल दोनों महसूस कर रही हैं कि क्रिस्टी केलब को देखकर बहुत बेचैन हो गई है। उसने डी॰जे को पंजाबी संगीत चलाने को कहा, उसकी रिद्म पर वह पागलों की तरह नाच रही है। एक-दो बार केलब उसके साथ नाचने आया, पर वह उससे दूर चली गई।

सोनल और क्रिस्टी का किशोर, निश्छल, मासूम यौवन, चेहरे का अप्रतिम सौंदर्य, पार्टी में जल रही रौशनियों को भी फीका और मद्धिम कर रहा है। दोनों के लिए यह विशेष दिन है। दोनों सोलह साल की हुई हैं। अमेरिका में सोलहवें जन्मदिन का बहुत महत्त्व है, इस दिन लड़की किशोरावस्था और युवावस्था की संधि में आ जाती है। सोनल के दादा-दादी और ताऊ-ताई बार-बार बलइयाँ लेकर खुश हो रहे हैं।

केलब की नज़रें क्रिस्टी के बदन पर थिरक रही हैं। क्रिस्टी उनसे बचने का प्रयास कर रही है, कभी सहेलियों और कभी वंदना के पास जाकर अपने-आपको बचा रही है।

वंदना उसे नज़रंदाज न कर सकी। वे नज़रें गर्ल फ्रैंड की बेटी पर नहीं, एक उमड़ते यौवन पर उठती महसूस हुईं। वंदना परेशान हो उठी और जैनेफ़र को ढूँढने लगी। वह केलब से बेख़बर रैड वाईन का ग्लास पकड़े, सोनल की दूसरी सहेलियों की माँओं के साथ बातें करने में व्यस्त है। इसदिन की एक और परंपरा है, क़रीबी सहेलियाँ, दोस्त या परिवार के सदस्य बर्थ-डे गर्ल के लिए बोलते हैं। इससे पहले कि वंदना उसके पास पहुँचती, जैनेफर हँसती हुई, छोटी-सी बनाई गई स्टेज पर आ गई, और माइक पकड़कर उसने बोलना शुरू कर दिया।

'सोनल के साथ-साथ क्रिस्टी को वंदना ने जो संस्कार दिए, उसी के कारण वह सोनल की तरह हर क्षेत्र में अच्छा कर रही है। उसके व्यक्तित्व के निखार और आत्मविश्वास को देखकर, कई बार मुझे ईर्ष्या होती है। काश! मुझे भी कोई वंदना जैसा गाइड और घनी छत मिली होती, जो मुझे कड़ी धूप, तेज़ बारिश से बचा सकती। मैं तो हाई स्कूल में ही पीटर के प्यार में पड़कर प्रेगनेंट हो गई और शीघ्र ही शादी करनी पड़ी। जीवन के संघर्ष में ऐसे उलझे, आगे पढ़ भी नहीं पाए। वंदना ने क्रिस्टी को वह सब दिया, जो मैं नहीं दे पाई। सबसे बढ़कर शंकर परिवार ने हमें अपना हिस्सा बनाया।' जैनेफ़र का गला भर गया, उससे बोला नहीं गया–'गॉड अपना आशीर्वाद तुम दोनों पर सदा बनाए रखे, बस यही प्रार्थना करती हूँ।' उसने क्रिस्टी और सोनल को गले लगाया और सिसक पड़ी। हॉल तालियों से गूँज उठा, सबकी आँखें गीली हो गईं। वंदना की आँखें भी नम हो गईं।

केलब भी दोनों को गले लगाने उठा, पर क्रिस्टी सोनल का हाथ पकड़कर दूर हट गई। बड़े अंदाज़ से उसने झुककर, हाथ जोड़कर, 'नमस्ते' कहा। यह सब उसने इतने ढंग से पेश किया कि लोगों की हँसी निकल गई, केलब खिसियाकर बैठ गया। वंदना हँस नहीं सकी। क्रिस्टी के अभिनय के बाद, वह क्रिस्टी के चेहरे की कठोरता को भाँप गई। क्रिस्टी उस रात अपने घर नहीं गई, सोनल के यहाँ ही रुक गई। सोनल समझ नहीं पा रही कि आख़िर क्रिस्टी को हुआ क्या है?

वंदना सारी रात असहज रही। उसके भीतर की औरत और अंतर्ज्ञान किसी अनहोनी के घटित होने का संकेत दे रहा है। भोर की पहली किरण ने धरा अभी छुई भी नहीं थी कि सोनल ने वंदना को जगाया–

'मम्मी उठिए, क्रिस्टी सारी रात तड़पती रही, उसे बहुत तेज़ बुखार है।'

'पर तुमने मुझे जगाया क्यों नहीं?'

'आप थकी हुई थीं, इसीलिए नहीं जगाया। क्रिस्टी ने भी आपको जगाने से मना कर दिया था।'

वंदना ने जल्दी से नाइट गाउन डाला और सोनल के कमरे की ओर तेज़ी से चल पड़ी।

क्रिस्टी को बुखार है, थर्मामीटर लगाया तो 104 डिग्री निकला। बुखार से ज़्यादा वंदना ने क्रिस्टी के चेहरे पर रोष, आक्रोश और शरीर में ग़ुस्सा महसूस किया। वंदना ने क्रिस्टी का चेहरा अपने नर्म हाथों में लेकर, उसकी आँखों में आँखें डालकर पूछा–'क्रिस्टी, केलब ने तेरे साथ क्या किया?'

इतना सुनते ही क्रिस्टी वंदना से लिपटकर फफक पड़ी...रोते-रोते उसने पूछा–'आपको कैसे पता?'

'माँ का अंतर्ज्ञान..' वंदना ने उसकी पीठ सहलाते हुए कहा।

'पर मेरी माँ को क्यों नहीं पता चला?' क्रिस्टी के इस प्रश्न पर वंदना बोली नहीं।

वंदना उसके सिर पर हाथ फेरने लगी, उसके स्नेह ने उसे सहज कर दिया, और भीतर का लावा पिघलने लगा....?

धीरे-धीरे वह बोली–'आंटी, दो दिन पहले केलब अंकल, मॉम को डिनर के लिए लेने आए। वे बाथरूम में

थीं। मैं उन्हें लिविंग रूम में बैठने को कहकर मुड़ने लगी, तो वे मेरे सामने आकर खड़े हो गए। उन्होंने मेरे उरोज़ दोनों हाथों से कसकर पकड़ लिए, मेरी चीख़ निकल गई–अचानक वार था, सँभल नहीं पाई। उन्होंने मेरा वक्ष छोड़कर, मेरे मुँह पर हाथ रखकर जकड़ लिया और बोले–'अगर आवाज़ निकाली या किसी को बताया, तो जान से मार दूँगा। मैं कली को खिलने का भरपूर समय देता हूँ, साथ दोगी तो माँ-बेटी दोनों को अथाह सुख दूँगा, नहीं तो तुम्हारे यौवन के उतार-चढ़ाव पार करना मेरे लिए कठिन नहीं है।'

'तुमने जैनेफर को बताया नहीं?'

'मैं बहुत ग़ुस्से में थी... और मॉम को बताने का समय भी नहीं था। मैंने अपना सामान उठाया और यहाँ चली आई।'

'ताइक्वांडो, किस दिन के लिए सीखा है? तुम दोनों ब्लैक बैल्ट हो।' वंदना ने उसका डर निकालते हुए कहा।

'आंटी, इसी बात का तो दु:ख है, मैं उसे बैल्ट नहीं दिखा पाई। उम्र-भर कलियों की ख़ुशबू से भी डरता।'

क्रिस्टी कुछ क्षणों के लिए चुप हो गई, जैसे कुछ कहने से पहले, अपने विचारों को समेट रही हो। वंदना ने उसे पानी का ग्लास और एक ब्रफिन की गोली दी।

थोड़ी देर बाद वह बोली–'आंटी, मुझे डर है, इस बार मॉम मेरी बात का यक़ीन नहीं करेंगी।'

'इस बार, क्या पहले भी कभी ऐसा हुआ है?'

'बचपन में, मॉम के दोस्त मुझे बच्चे की तरह रखते थे। ज्यूँ-ज्यूँ मैं बड़ी होनी शुरू हुई, कई दोस्त अच्छे आए और कई मुझमें कुछ ढूँढते रहते। उनकी नज़रों से तंग आकर मैं मॉम को बताती और वे उन्हें छोड़ देतीं। अब बढ़ती उम्र में वे असुरक्षित हो गई हैं। उन्हें लगता है कि दो साल बाद, मैं विश्वविद्यालय में पढ़ने कहीं दूर चली जाऊँगी। वे अकेली कैसे रहेंगी? तभी केलब जैसे घटिया इंसान के साथ जुड़ी हुई हैं।'

'तुम बात को टाल रही हो। क्या केलब ने पहले भी कुछ कहा था?' वंदना ने उसके चेहरे पर नज़रें टिकाते हुए, दृढ़ता से पूछा।

'वे आँखों से मेरा शरीर उधेड़ते रहते हैं। मैंने जब मॉम को बताना चाहा, तो उन्होंने मेरी बात भी नहीं सुनी, हम दोनों का झगड़ा हो गया। माँ ने बहुत-सी अनर्गल बातें कह दीं कि मैं माँ से ईर्ष्या करती हूँ, क्योंकि मेरा कोई ब्यॉय फ्रैंड नहीं है। केलब अंकल बड़े चालाक हैं, उन्होंने पहले ही माँ को उकसा दिया है कि मैं स्वार्थी हूँ और उनकी शादी कभी नहीं होने दूँगी।' क्रिस्टी बिना रुके बोलती गई–'आंटी, दो साल बाद मुझे घर से चले ही जाना है, सोचती थी, किसी अच्छे आदमी से माँ शादी कर लें, तो मैं भी बाप का प्यार पा लूँ। उस स्नेह को महसूस कर लूँ। अब तो दो साल काटने भी मुश्किल लगते हैं।' वंदना ने देखा, उसकी आँखों में थकान उतर आई है। उसने उसका माथा दबाते हुए कहा–'क्रिस्टी सो जा, शाम को बात करेंगे।' और उसने कंबल ठीक करके उसको ओढ़ाया। थोड़ी देर बाद क्रिस्टी गहरी नींद में चली गई। वह भी सोनल के लिए नाश्ता बनाने चली गई।

गोधूली बेला में वंदना पूजा करके उठी ही है, तभी जैनेफर आ गई। वंदना ने उसे सारी बात बताई। वह चुप रही और क्रिस्टी को लेकर वहाँ से चली गई।

दूसरे दिन क्रिस्टी स्कूल नहीं गई और न जैनेफर काम पर। दोपहर तक दोनों ख़ामोश रहीं। जैनेफर ने ही बात शुरू की–'क्रिस्टी बात को समझने की कोशिश कर, मैं केलब के बिना नहीं रह सकती। मैं उसे बहुत प्यार करती हूँ। वह भी मुझे बहुत प्यार करता है.. उसने वह सब दिया है, जो तुम्हारे डैड मुझे नहीं दे सके। कहीं कुछ ग़लतफ़हमी हुई है।'

'ग़लतफ़हमी, यह आप कह रही हैं? अपनी बेटी को...अमेरिका के कानून के अनुसार मैं 18 साल तक अवयस्क हूँ, पर प्रकृति ने मुझे पूर्णता प्रदान कर दी है। मैं बहुत-कुछ सोचती, समझती और महसूस करती हूँ।'

'क्रिस्टी, तुम अभी भी बच्ची हो। यह सब तुम्हारे मस्तिष्क में वंदना ने भरा है। वह तुम्हें हिंदू बनाने पर तुली है।'

क्रिस्टी के चेहरे पर क्रोध की रेखाएँ उभरीं.... वंदना की बात याद आते ही वह शांत हो गई–'गर्ल्स, ग़ुस्सा विवेक खो देता है। कोई बड़ा फ़ैसला लेना हो या महत्त्वपूर्ण बात कहनी हो, तो शांत रहना चाहिए।'

क्रिस्टी ने नरम होते हुए कहा–'ऐसी बातें करके मेरे दिल से अपना सम्मान कम न करें। आप भी जानती हैं, यह सही नहीं है। आपको तो यह भी पता नहीं, आपकी बेटी की किशोरावस्था कब पीछे छूट गई... उसे माहवारी कब आई और उस दिन उसने क्या महसूस किया? पहली ब्रा उसने कब ख़रीदी? इन सबका ख़्याल मिसिज शंकर ने रखा, इससे जुड़ी सारी जानकारी मुझे दी, मुझे शिक्षित किया। केलब अंकल की भाषा न बोलें, मुझे सब समझ में आता है।' यह सुन जैनेफर ढीली पड़ गई।

क्रिस्टी मधुर स्वर में कहती गई–'माँ, आप जैसी

भी हैं, मेरी माँ हैं। माँ-बाप चुने नहीं जाते। हमारे सीमित साधनों और आपकी मजबूरियों को मैं भली-भाँति समझती हूँ। मैं दो विकल्प आपको देती हूँ। पहला, अगर आपको अभी शादी करनी है, तो मैं स्कूल के परामर्शदाता से बात करके, सामाजिक कार्यकर्ताओं की सहायता से, किसी पोषक गृह (फोस्टर होम) में चली जाती हूँ। केलब अंकल के साथ मैं इस घर में नहीं रह सकती, मैं उनकी सूरत तक नहीं देखना चाहती। दूसरा, आप शादी के लिए मेरे 18 वर्ष की होने की प्रतीक्षा करें। जब मैं विश्वविद्यालय चली जाऊँगी, आप शादी कर लें। दो साल केलब अंकल इस घर में या घर के आस-पास भी नहीं आएँगे, अन्यथा मैं भूल जाऊँगी कि आप उनसे शादी करना चाहती हैं, 911 डॉयल करते मुझे देर नहीं लगेगी, पाँच मिनट में पुलिस पहुँच जाएगी। आप केलब को, उनके घर या बाहर मिल सकती हैं, मुझे कोई आपत्ति नहीं। आपकी ज़रूरत मैं समझती हूँ।' जैनेफ़र क्रिस्टी के दमकते चेहरे और दृढ़ आत्मविश्वास के आगे झुक गई। क्रिस्टी यह कहकर, अपने स्कूल का काम करने चली गई।

जैनेफ़र सारी रात ममता और काया की कामना के अंतर्द्वंद्व में उलझी, जागती रही। एक तरफ़ केलब, जो उसे अथाह दैहिक सुख देता है.. और उसकी लच्छेदार बातें, उसे ज़मीन से आसमान तक ले जाती हैं। उसने जीसस की कसम खाकर जैनेफ़र को विश्वास दिलाया था कि उसने क्रिस्टी के साथ ऐसा-वैसा कुछ भी नहीं किया। दूसरी तरफ़ बेटी.....इतना बड़ा झूठ, वह नहीं बोल सकती, उसकी आत्मा नहीं मानती। ऊहापोह में उसे वंदना पर गुस्सा आया। उसे अकेलापन क्यूँ नहीं खलता? उसकी देह क्यों नहीं माँग करती? वह झुँझला गई।

उसने अपने बिस्तर के गद्दे के नीचे दबी क़िताब कामसूत्र निकाली, उसके मुखपृष्ठ को बड़े प्यार से सहलाया.. बाक़ी पृष्ठों को उलट-पलटकर देखा। केलब ने बार्न्स एंड नोबल से उसे ख़रीदा था और जैनेफर के जन्मदिन का उपहार थी, वह किताब। जन्मदिन वाली रात पुस्तक में चित्रित क्रियाओं का आनंद उठा, उन्होंने चरम सुख पाया था। उन्हीं क्षणों की याद में वह खो गई.. क़िताब उसने सीने से लगा ली, कुछ देर तक वह सोचों की तरंग में बह गई.... उसे अपना बदन भारी-सा महसूस होने लगा, आँसुओं से आँखें भर आईं।

फ़ोन की घंटी ने उसकी तंद्रा तोड़ी, क्रिस्टी ने फ़ोन उठा लिया है। उसे वंदना की बात याद आ गई-'जैनेफर, एक शरीर ही तो अपना होता है। इसे अनुशासन में रखना ज़रूरी है, यह काम मस्तिष्क करता है। ध्यान ही दिमाग़ से सही संदेश दिलवा सकता है। तुम मेडिटेशन किया करो, भटकना रुक जाएगा और सही दिशा मिलेगी।' उस दिन जैनेफर चिढ़ गई थी।

अब भी यह सोचकर खीझ गई-'मेडिटेशन, आन माय फुट, जैसे खाना-पीना शरीर के लिए ज़रूरी है, वैसे ही प्यार और सैक्स। एक पार्टनर चला जाए, दूसरा अपनी इच्छाएँ क्यों मारे? यह सब भावनाओं के दमन वाली बातें हैं। वंदना को उसका दर्शन शुभ हो। वह तो है ही एबनार्मल, मैं वैसी क्यूँ बनूँ?'

भीतर का रोष निकालकर जैनेफ़र थोड़ा हल्का महसूस कर रही है, कनपटी से जबड़ों तक तनाव था।

क्रिस्टी ने अपने कमरे से सोनल को एस॰एम॰एस भेजा-'मम्मी को कहना, वह घबराएँ न, मुझे अपनी लड़ाई लड़नी आती है।'

पर उसे लड़ाई लड़नी नहीं पड़ी। सुबह जब जैनेफ़र उठी, उसका चेहरा अत्यधिक बर्फ़बारी के बाद बादलों की ओट से उगते सूरज-सा उजला और निखरा हुआ है। शायद किसी निर्णय पर पहुँच चुकी है।

स्कूल जाते समय जैनेफ़र ने क्रिस्टी को कहा-'क्रिस, तुम आराम से दो साल पढ़ सकती हो। मुझे तुम्हारी सब शर्तें मंजूर हैं।' क्रिस्टी मुस्कुरा दी, शायद उसे माँ के इसी निर्णय की प्रतीक्षा थी.... पहली खिली सरसों-सी दमकती वह स्कूल बस की तरफ़ भागी.....

क्रिस्टी ने बेबी सिटिंग शुरू कर दी, उसकी कई सहेलियाँ यह काम कर रही हैं। अमेरिका में पंद्रह-सोलह वर्ष के बाद लड़कियाँ स्कूल के उपरांत माँ-बाप की अनुपस्थिति में बच्चों की देख-रेख का काम करने लगती

इमराना
हाज़िर हो

कहानी-संग्रह
महेशचंद्र द्विवेदी

मूल्य :
सजिल्द 150 रुपए

हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर

हैं। इससे उन्हें कुछ पैसे मिल जाते हैं और गर्मी की छुट्टियों में क्रिस्टी ग्रौसरी स्टोर में नौकरी भी करने लगी। इनसे कमाया पैसा, वह अपनी पढ़ाई के लिए जोड़ने लगी। एक बार केलब, उस ग्रौसरी स्टोर से ग्रोसरी लेने आया, जहाँ वह काम करती है, पर उसने क्रिस्टी की ओर देखा भी नहीं। दो-तीन बार वह उसकी मॉम को घर छोड़ने आया तो बाहर से ही चला गया। क्रिस्टी की असुरक्षित भावनाएँ स्थिर होने लगीं...

दो साल बहुत तेज़ी से बीत गए.. सोनल को तो वह स्कूल में मिल ही लेती है, वंदना के साथ भी वह जुड़ी हुई है। एस॰ए॰टी की परीक्षा, जिसके अंकों से कॉलेज में प्रवेश मिलता है, वंदना की देख-रेख में दोनों ने उच्चस्तर में पास की। कालेज प्रविष्टि के फ़ार्म भी वंदना ने ही भरवाए। ख्यातिप्राप्त कालेजों से बुलावा आ गया है। सोनल ने बोस्टन विश्वविद्यालय को स्वीकृति भी भेज दी, वह डॉक्टर बनना चाहती है। आठ साल के सीधे डॉक्टरी प्रोग्राम में उसे प्रवेश मिला है। क्रिस्टी ने दो कॉलेजों का चुनाव किया, जिनसे उसे आर्थिक सहायता और छात्रवृत्ति मिलने की आशा है। अभी उसने स्वीकृति किसी को भी नहीं भेजी। उसके पास अंतिम निर्णय करने के लिए दो सप्ताह का समय है....।

भोर का घूँघट उठे अभी कुछ पल ही बीते थे, उसी समय सोनल ने लगभग चीख़ते हुए वंदना को बुलाया– 'मॉम.. कम अपस्टेअर्ज इन माय रूम।' आवाज़ सुनते ही वंदना रसोई में से, भागकर ऊपर गई।

सोनल के सामने कंप्यूटर खुला हुआ है और क्रिस्टी की एक बड़ी सी ई-मेल, जिसमें लिखा है–

वंदना माँ,

इस संबोधन का अधिकार स्वयं ही ले रही हूँ। बहुत दिनों से, आपको इस तरह पुकारना चाहती थी, पर बुला नहीं पाई। तकरीबन सात बजे, कल रात मैंने घर छोड़ दिया। शाम के पाँच बजे, शरारती मुस्कान लिए केलब अंकल मॉम के साथ शादी करके घर आ गए और आते ही माँ के तर्क शुरू हो गए। दो साल केलब ने हमारी बात मानी, आज उसकी सुन लो। वह मेरी कसम खाकर तुम्हें बेटी मानता है। इन गर्मियों में साथ रहकर परिवार और बाप का सुख ले लो, फिर तो तुमने चले ही जाना है। मॉम अंकल की चाल में आ चुकी थीं। मैंने उनकी वही पुरानी नज़रें, आँखों में तैरती प्यास की लहरें और चेहरे पर विजय के भाव पढ़ लिए थे। मैंने भी अभिनय किया, मुझे उनकी शादी की बहुत ख़ुशी है और एक उत्सव के साथ नए जीवन की शुरुआत करना चाहती हूँ। रात को विशेष खाना बनाना चाहती हूँ, और एक लंबी-चौड़ी लिस्ट देकर, उन्हें ग्रौसरी लेने भेज दिया। ज़रूरी सामान उठाकर, मैंने घर छोड़ दिया...एक पत्र मॉम के लिए छोड़ आई हूँ। कुछ पैसे मैंने जोड़े थे, वे इस समय काम आएँगे। किस कालेज में प्रवेश लूँगी, नहीं जानती, आपको बता दूँगी, पर मॉम और केलब अंकल को कभी नहीं और कुछ नहीं बताऊँगी। मुझे उम्र-भर उनसे दूर रहना है। आपके पास आ सकती थी। अठारहवें जन्मदिन में तीन दिन बाक़ी हैं। केलब अंकल कमीने हैं ..अवयस्क को पथभ्रष्ट करने का दोष लगाकर, आपको तंग कर सकते हैं। यशोदा मैया को ऐसे छोड़ूँगी, कभी सोचा न था। आपके संस्कार और समय-समय पर दी गई नसीहतें ढाल और कवच का काम करेंगे, सोनल को सँभालिएगा। वह मेरे इस तरह जाने से बहुत दु:खी होगी। आप मेरे हृदय में मंदिर की घंटी-सी समाई हुई हैं। आपकी बातों की खनक कानों में गूँजती रहती है। माँ बहुत ख़ुश हैं और मैं उनके लिए ख़ुश हूँ। अब मैं उन्हें मिलूँगी नहीं। जीवन के लिए, जो सोचा है, उस लक्ष्य तक पहुँचना चाहती हूँ। जिस दिन कुछ बन गई, तब आपको मिलने ज़रूर आऊँगी.....टेक केयर (ख़याल रखिएगा)'

आपकी मुँह बोली बेटी,
क्रिस्टी

सोनल पत्र पढ़ते-पढ़ते रो पड़ी.... इससे पहले कि वंदना उसे चुप कराती, डोर बैल बज उठी। दोनों हैरान हो गईं, इस समय कौन आया है? वंदना जल्दी से नीचे गई, दरवाज़ा खोला, पुलिस अफ़सर के साथ केलब और जैनेफर को खड़े पाया। वंदना बिना कुछ बोले संकेत से उन्हें सोनल के कमरे में ले आई और ई-मेल पढ़वा दी.. .अफ़सर उन दोनों को घूरता सीढ़ियाँ उतर गया.....।

ऐसा लगा... एक टॉरनेडो (प्रभंजन) आया और सब-कुछ तहस-नहस कर गया। जैनेफर की आँखों में सीलन आ गई और बाहर बादलों ने भयंकर गर्जन के साथ, कहीं बिजली गिराई, तेज़ तूफ़ान और आँधी अत्यधिक शोर मचाते महसूस हुए, सबके भीतर एक बवंडर चीख़ उठा .. ..बाहर और भीतर एक-जैसी आवाज़ें सुनाई दीं .....।

101, Guymon Court, Morris Ville, NC-27560 USA
फोन : 919678-9056**; मोबाइल** 919801-0672**; ई-मेल:**
sudhaom9@gmail.com;
वैबसाइट–www.vibhom.com,
www.shabdsudha.blogspot.com

काला सागर

तेजेंद्र शर्मा

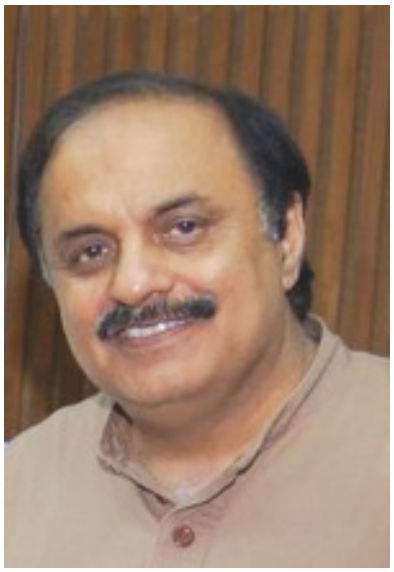

विमल महाजन ने आज दफ़्तर से अवकाश ले रखा था। उन्हें कई दिनों से लग रहा था, जैसे उनका शरीर आवश्यकता से अधिक थकता जा रहा है। उन्होंने फैसला किया कि आज केवल आराम ही किया जाए, देर तक सोए। उठकर आराम से सुबह के कामों से निवृत्त हुए और समाचार-पत्र लेकर बैठ गए।

आजकल समाचार-पत्र पढ़ने में उन्हें कोई विशेष रुचि नहीं रही थी। पंजाब में हो रही घटनाओं को पढ़कर उन्हें एक अजीब-सी बेचैनी होने लगती। उन्हें हमेशा याद आता था अपना वह छोटा-सा गाँव जगराँव, जहाँ उनका जन्म हुआ था, लुधियाना के क़रीब ही। जब कभी बहुत प्रसन्न मुद्रा में होते, तो कहते, इस जगराँव में हिंदुस्तान की दो महान विभूतियों ने जन्म लिया है—एक थे लाला लाजपतराय, और दूसरा! और... यह कहकर वे अपनी ओर देखते और हँस पड़ते। किंतु आजकल जैसे स्वयं से ही सवाल पूछते रहते थे, क्या हो गया है अपने पंजाब को? एक दिन बहुत भावुक होकर बोले, 'रंजना, हम तो एकदम स्टेटलैस होकर रह गए हैं। यहाँ बंबईवाले तो नारा लगाते हैं, सुंदर मुंबई मराठी मुंबई, यानी हम तो यहाँ के कभी नहीं हो सकते। और पंजाब जाने का अर्थ है, मौत को दावत देना। इतना बुरा हाल तो सैंतालीस में भी नहीं हुआ था।' और फिर वे एक गहरी सोच में डूब गए। कितना भयावह विचार है! आपकी मातृभूमि आपसे छिन जाए, बिना किसी अपराध के!

विमल महाजन को एअरलाइन की नौकरी करते तीस वर्ष हो गए थे। बस, चार-पाँच वर्ष में रिटायर होने वाले थे। सारी दुनिया ही उनके छोटे से संसार का हिस्सा बनी हुई थी। एक विमान-परिचारक की हैसियत से उन्होंने नौकरी शुरू की थी। परंतु अपनी मेहनत व ईमानदारी के बल पर इस उच्च पद पर पहुँच गए थे। इस बीच उनका विवाह भी हुआ और तीन बच्चे भी। कैसे समय निकलता जा रहा है उनकी मुठ्ठी से! वैसे उन्हें देखकर कोई यह नहीं मान सकता था कि वे दो-दो बच्चों के नाना भी हैं। इसका कारण संभवत: उनका पहनावा था, जिसके प्रति वे अतिरिक्त सचेत थे। इतने ही वे अपनी सेहत के बारे में भी थे। स्पष्टवादिता उनकी एक और विशेषता थी, जिसके कारण वे कभी प्रशंसा तो कभी आलोचना के पात्र बनते थे।

विमल महाजन ने समाचार-पत्र को दो-तीन बार उलट-पुलटकर देख लिया था और आरामकुर्सी पर अलसा रहे थे, तभी फ़ोन की घंटी बजी। उन्हें काफ़ी कोफ़्त हुई। आज का दिन वे आराम से ही बिताना चाहते थे। टेलीफ़ोन या और कोई भी विघ्न उन्हें नहीं चाहिए था। अन्यमनस्क भाव से उन्होंने फ़ोन उठाया। फ़ोन एअरपोर्ट से ही था। वे झुँझलाए से स्वर में बोले, 'भई, आज तो आराम करने दो।'

महाजन साहब, ग़ज़ब हो गया। ज़ीरो नाइन वन क्रैश हो गई। लंदन के पास।'

'क्या? मैं अभी पहुँचता हूँ।'

विमल महाजन के जबड़े थोड़े भिंच गए थे। वे जैसे याद करने का प्रयत्न कर रहे थे कि जीरो नाइन वन, पर कौन-कौन क्रू-मेंबर होगा। लगभग बदहवासी की-सी स्थिति में उन्होंने कपड़े पहने और ऑफ़िस चलने को तैयार हो लिए।

रंजना, उनकी पत्नी, समझ गई कि कोई गड़बड़ अवश्य है। जब कभी विमल महाजन परेशान होते, तो उनके जबड़े भिंच जाते थे।

'क्या बात है? आप तो आज आराम करने वाले थे। फिर एकाएक कहाँ की तैयारी होने लगी है?'

विमल महाजन की इच्छा हुई कि सब काम-धाम छोड़कर वापस चले जाएँ। इंसान इतना स्वार्थी भी हो सकता है! ये भावनाविहीन लोग इस हादसे से अपना-अपना स्वार्थ सिद्ध करने की कोशिश में लगे हैं। पर वे तो यह सारा काम अपने सहयोगियों को श्रद्धांजलि के रूप में कर रहे थे। उन्हें यह सब करना ही होगा। धैर्य के साथ...।

'रंजू, न्यूयार्क फ़्लाइट क्रैश हो गई है। दफ़्तर...'

'क्या? अरुण भी तो न्यूयार्क ही गया है।'

'अरुण! हे भगवान! सब ठीक हो। देखो, मैं अभी ऑफ़िस जाकर तुम्हें फ़ोन करूँगा...।' विमल महाजन का स्वर भर्रा उठा था और वे अपनी बात पूरी नहीं कर पाए थे।

रास्ते-भर अरुण के विषय में ही सोचते रहे। उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि अरुण की पत्नी को वे केसे समाचार दे पाएँगे। अरुण उन्हें अपने बेटे के समान प्रिय था। उसके विवाह में वे अपने सारे सिद्धांतों को ताक पर रखकर, सिर पर पगड़ी बाँधकर, घोड़ी के सामने नाचे थे। अनुराधा, अरुण की पत्नी भी उनका बहुत आदर करती थी। उनके हाथ ठंडे हुए जा रहे थे। नास्तिक होते हुए भी, भगवान से प्रार्थना कर रहे थे कि अरुण सुरक्षित हो।

दफ़्तर के बाहर कुछ लोग जमा थे यानी ख़बर फैल चुकी थी। सबके चेहरों पर सहमी हुई उत्सुकता थी। सब दुर्घटना के विषय में जानना चाहते थे। पर कैसे पूछें, कौन पूछे। उनके सहायक अफ़जल ख़ान ने ही उन्हें बताया, 'सर, फ़्लाइट ज़ीरो नाइन वन मांट्रियल से लंदन आ रही थी। रास्ते में ही लंदन के क़रीब सागर के ऊपर ही फ़्लाइट में एक धमाका हुआ और फ़्लाइट क्रैश हो गई। अभी पूरी डिटेल्स आनी बाक़ी है।'

विमल महाजन ने अपने-आपको व्यवस्थित किया, और लंदन फ़ोन मिलाने लगे, ताकि पूरा समाचार मिल सके और वे आगे की कार्यवाही आरंभ कर सकें, परंतु फ़ोन मिल नहीं पा रहा था।

क्रू लिस्ट देखी। अरुण का नाम उसमें नहीं था। उन्हें काफ़ी राहत महसूस हुई। पर... पर जो लोग फ़्लाइट पर थे, वे सभी उनके अपने परिचितों में से थे।

रमेशकुमार! जिसका अभी-अभी तीन महीने पहले ही विवाह हुआ था। माँ-बाप की इच्छा के विरुद्ध एक पारसी एअर होस्टेस से विवाह किया था उसने। दोनों ही इस फ़्लाइट पर थे। काश, यह ख़बर झूठी हो! वे मन-ही-मन प्रार्थना कर रहे थे।

ख़बर फैलने के साथ-साथ लोगों की उत्सुकता बढ़ती जा रही थी। फ़ोन-पर-फ़ोन आ रहे थे। पर विमल महाजन का मन हो रहा था कि वे कानों पर हाथ रखकर बैठ जाएँ, चुपचाप। किसी के प्रश्नों का कोई उत्तर न दें। पर चिंतित संबंधियों की जिज्ञासा शांत करना उनका कर्तव्य था।

यदि विमल महाजन स्वयं इस दुर्घटना से इतने विचलित हो गए हैं, तो जिनके भाई-बहन, माँ-बाप, पति और न जाने कितने रिश्तेदार उस विमान में आ रहे थे, उनकी चिंता स्वाभाविक थी; और वे बिना अपना धैर्य खोए फ़ोन अटैंड करने लगे।

टेलैक्स की खटखट शुरू हुई। लंदन से पहला संदेश आया : अनुमान है कि विमान आतंकवाद का शिकार हुआ है। विमान में क्रू व यात्रियों सहित तीन सौ उन्तीस लोग थे। अभी किसी के बचने की कोई सूचना नहीं... यदि कोई बचा भी तो क्या ठंडे एटलांटिक के बर्फ़ीले पानी में जीवित रह पाएगा? विमल महाजन के मस्तिष्क के घोड़े दौड़े जा रहे थे। कहाँ तो यात्री और क्रू-मेंबर लंदन पहुँचने के बारे में सोच रहे होंगे, और कहाँ गहरे सागर का काला अँधेरा!

'क्या आतंकवाद का कोई धर्म होता है? सोच जारी थी, क्या एक विमान उड़ा देने से आतंकवादियों की बातें मान ली जाएँगी? क्या इन तीन सौ उन्तीस लोगों को भी शहीद कहा जाएगा? जलियाँवाला बाग़ में भी तो बिल्कुल इतने ही लोग शहीद हुए थे। देश उन्हें आज तक नहीं भुला पाया। क्या इन शहीदों को भी लोग याद रख पाएँगे? मारा तो उन्हें भी गोरी सरकार के आतंकवादी अफ़सरों ने था। निहत्थे वे भी थे और निहत्थे ये भी। क्या फिर ऊधमसिंह खड़ा होगा, जो कि इन आतंकवादियों का सफ़ाया करेगा?

टेलीफ़ोन की घंटी बजी। विमल महाजन की तंद्रा टूटी। फ़ोन घर से था। रंजना भी अरुण के लिए परेशान थी।

शाम के सात बज गए थे। यात्रियों के नाते-रिश्तेदारों के टेलीफ़ोनों का ताँता लग गया था। अब तो लोग एअरपोर्ट पर इकट्ठे हो चुके थे। सबके मुँह पर एक ही सवाल था, कोई ख़बर आई? सब मन-ही-मन अपने संबंधियों की ख़ैर की प्रार्थना कर रहे थे। उन सबकी

भावनाओं के तूफ़ान को सँभाल पाना एअरलाइन के कर्मचारियों के लिए कठिन पड़ रहा था। विमल महाजन स्वयं सबको तसल्लियाँ दे रहे थे। लंदन से विस्तृत समाचार की प्रतीक्षा हो रही थी।

पत्नी का फ़ोन फिर आया। 'आप एक बार घर आकर खाना खा जाते।' उन्होंने अपनी झुँझलाइट रंजना पर ही उतार दी।

ऐसे में भला कोई खाने के विषय में कैसे सोच सकता है? किंतु नहीं, उनके मातहत एक-एक करके अपने पेट को ख़ूब शांत कर आए थे। केवल विमल महाजन स्वयं लोगों को दिलासा देने में व्यस्त थे। टेलैक्स से समाचार आ रहे थे। लंदन से सत्तर मील दूर आकाश में एक धमाका हुआ था और विमान सागर में खो गया था। यह भी कि नौकाएँ और पनडुब्बियाँ खोज के लिए भेजी जा रही हैं। विमल महाजन यंत्रवत् अपना काम किए जा रहे थे। निश्चय हो गया था कि कोई नहीं बचा इस दुर्घटना में।

जहाज़ के कप्तान विक्रमसिंह विमल महाजन के मित्र थे। बंबई में जब कभी इकट्ठे होते तो दोनों खार जिमख़ाना में शामें बिताया करते थे। ब्रिज दोनों का प्रिय खेल था। पर विमल महाजन कभी पैसे लगाकर ताश नहीं खेलते थे। कप्तान विक्रमसिंह सदा ही उन्हें पोंगा पंडित कहकर चिढ़ाते थे। छः महीने में ही रिटायर होने वाले थे। पर अब जैसे कुछ भी शेष नहीं रहा था! न ब्रिज, न पोंगा पंडित कहने वाला उनका दोस्त।

फ़्लाइट परिचर अनिरुद्ध सेन की तो केवल छः महीने की बेटी है, जब उनकी पत्नी को यह समाचार मिलेगा तो वह कैसे सहन कर पाएगी इस वज्रपात को? कई क्रू-मेंबर एअरपोर्ट पर इकट्ठे हो गए थे। विमल महाजन ने कुछ लोगों को घरों में जाकर सूचना देने का काम सौंपा। बहुत कठिन काम था, वे जानते थे। समाचार सुनकर घर के सदस्यों की प्रतिक्रिया सोचकर उनका दिल बैठा जा रहा था। कैसे कहेंगे एक पत्नी को कि उसका पति अब कभी नहीं लौटेगा? कैसे कहेंगे एक बच्ची को कि तुम्हारे पापा अब कभी भी तुम्हारे लिए मिकी माउस और डोनाल्ड डक के खिलौने नहीं लाएँगे?

तीन-चार दिन सब कुछ अस्त-व्यस्त रहा। एअरपोर्ट पर संबंधियों का ताँता लगा रहा। विमल महाजन भी पिछली कई रातों से सो नहीं पाए थे। समाचार-पत्रों में भी एक ही समाचार सुर्ख़ियों में था। विमान-दुर्घटना के कारणों का पता लगाना था, ब्लैक बॉक्स की चर्चा थी, जाँच-समिति का गठन, और बहुत-सी औपचारिकताएँ।

दो दिनों से फाका करते, सड़क के किनारे पर बैठे ननकू को भी कहीं से ख़बर लग गई थी। पोलियोग्रस्त हाथ से सींगदाना चबाते हुए उसने अपने साथी पीटर को ख़बर सुनाई थी, 'यार, यह विमान अगर गिरना ही था, तो साला समुद्र में क्यों गिरा? सोच, कितनी बढ़िया-बढ़िया चीजें—वीसीआर, टीवी, सोना, घड़ियाँ सब-के-सब बेकार! यहीं कहीं अपने शहर के आसपास गिरता तो कुछ तो अपने हाथ भी लगता।'

'ए मैन, अभी धंधे का टाइम है। ख़ाली-पीली टाइम वेस्ट करने का नहीं... क्या हाँ भाई, गॉड का वास्ते इस ग़रीब को भी कुछ दे दो। जीजस क्राइस्ट भला करेगा।'

विदेश के कई आतंकवादी गुटों ने इस दुर्घटना का उत्तरदायित्व ओढ़ा। जैसे कोई बहुत महान कार्य किया गया हो और वे उसका श्रेय लेना चाहते हों। बीमार, विकृत मानसिकता के लोग, जो निर्दोष लोगों को मौत की नींद सुलाकर गर्वान्वित अनुभव कर रहे हैं। विमल महाजन का मन वितृष्णा से भर गया।

एअरलाइन के हैड क्वार्टर में कई मीटिंगें हुई। तय हुआ कि विदेशी नागरिकों का वहाँ के क़ानून के अनुसार मुआवज़ा दिया जाएगा और भारतीयों को भारतीय कानून के अंतर्गत। रंगभेद का यह भी एक रूप था, चमड़ी-चमड़ी में फ़र्क जो है।

विमल महाजन ने प्रस्ताव रखा कि एक विमान चार्टर किया जाए और मरनेवालों के निकटतम संबंधियों को लंदन भेजा जाए, जिससे वे अपने प्रियजनों की लाशें तो पहचान सकें। उच्च अधिकरियों ने स्वीकृति दे दी।

'क्रू यूनियन ने प्रत्येक मृतक क्रू-मेंबर के परिवार के लिए एक-एक लाख रुपया देने का फैसला किया था। विमल महाजन को झटका-सा लगा, जब रमेश कुमार के पिता उनसे मिलने दफ़्तर पहुँचे।

'मिस्टर महाजन, मैं रमेश का पिता हूँ। आजकल मैं और मेरी पत्नी तलाक़ लेकर अलग-अलग रह रहे हैं। आपको याद होगा कि पिछले क्रैश में मेरी बेटी नीना की मौत हो गई थी। उस समय भी एअरलाइन और क्रू-यूनियन ने मुआवज़ा मुझे ही दिया था। मैं चाहता हूँ कि अब भी मेरे बेटे और बहू की मृत्यु का मुआवज़ा मुझे ही मिले। इससे पहले कि मेरी पत्नी इसके लिए अर्जी दे, मैं आपके पास अपने क्लेम की यह अर्जी छोड़े जा रहा हूँ, ताकि आप इंसाफ़ कर सकें। मैं तो अब बूढ़ा हो चला हूँ। कमाई का अब और कोई ज़रिया है नहीं।'

'ठीक है, आप अर्जी छोड़ जाइए। समय आने पर उस पर विचार किया जाएगा।'

'बड़ी कृपा होगी आपकी। नहीं तो इस उम्र में कोर्ट-कचहरी जाने की तो शरीर में ताक़त नहीं रह गई। चलता हूँ।'

विमल महाजन किंकर्तव्यविमूढ़ से कुर्सी पर बैठे थे।

शिनाख़्त के लिए संबंधियों को लंदन ले जाने की पूरी ज़िम्मेदारी विमल महाजन को ही सौंपी गई। लंदन जाने के लिए संबंधियों का ताँता लग गया था। विमल महाजन तय नहीं कर पा रहे थे कि किसे भेजें, किसे रोकें। हर रिश्तेदार अपना रिश्ता अधिक नज़दीकी बताता था।

लंदन जाने के लिए विमान तैयार था। रोते-कलपते रिश्तेदारों के बीच विमल महाजन को स्वयं को संयत रख पाना काफ़ी मुश्किल लग रहा था।

मिसेज वाडेकर की हिचकियाँ अभी भी जारी थीं। उनका बेटा विदेश से बंबई केवल विवाह करने के लिए आ रहा था। उन्हें क्या पता था लंदन जाना पड़ेगा, डोली के स्थान पर अर्थी लेने। 'मैं तो अपने बेटे को दूल्हा बनाकर ही विदा करूँगी।' मिसेज वाडेकर विक्षिप्त अवस्था में बड़बड़ाए जा रही थीं।

मगनभाई की बीस वर्षीया पोती विदेश से अकेली आ रही थी। उसके पिता को छुट्टी नहीं मिल पाई थी उसके साथ आने के लिए। खिड़की के पास बैठे हुए वे जैसे शून्य में देख रहे थे।

दो-दो मौतों का बोझ लिए दीपिंदर विमान में बैठा था। पिछले सप्ताह ही उसके पिता का देहांत हो गया था और उन्हीं के अंतिम संस्कार के लिए उसका भाई सुक्खी अमेरिका से आ रहा था। दु:ख में सब एक थे। किसी का भी कोई धर्म, मज़हब नहीं था। सुख में था भी तो आतंकवादियों को उससे कोई लेना-देना नहीं था। वह हर धर्म वाले को अपनी पशुता का शिकार बना लेते हैं।

विश्व-भर से अलग-अलग एजेंसियों ने एटलांटिक में खोजबीन शुरू कर दी थी। पहले विमान के कुछ क्षतिग्रस्त हिस्से मिले। फिर विक्षिप्त लाशें मिलनी शुरू हुई। लाशों को जैसे किसी ने उधेड़ दिया हो, चिंदी-चिंदी हुए शरीर। लाशें पहचानना भी बहुत कठिन काम था।

लंदन में सभी रिश्तेदारों के रहने, खाने-पीने की व्यवस्था एयनलाइन की ओर से मुफ़्त की गई थी। विमल महाजन सभी कार्य बड़ी तत्परता से निभा रहे थे। स्वयं उन्हें अपने खाने-पीने और सोने का भी ध्यान नहीं था। वंचित लोगों की सेवा करके संभवत: वे स्वयं को संतुष्ट करना चाहते थे। उनका यही प्रयत्न था कि किसी भी यात्री को कोई शिकायत या असुविधा न हो।

एक यात्री विमल महाजन तक पहुँचा, 'मिस्टर महाजन, खाना-पीना तो ठीक है, पर हमें आप कुछ अलाउंस वगैरह भी दिलवाने का प्रबंध करवा दें तो अच्छा होगा। हम सब इतनी जल्दी में आए हैं कि एफ॰ टी॰एस॰ का प्रबंध नहीं हो पाया। कम-से-कम इतना रोज़ाना भत्ता तो हमें मिलना चाहिए, जिससे हमें कहीं बाहर आने-जाने में मुश्किल न हो।'

विमल महाजन हैरान!

शीला देशमुख के पिता किसी सरकारी महकमे में उच्च अधिकारी थे, 'महाजन साहब, हमारी बेटी ने तो एअरलाइन के लिए जान दे दी। उसके बदले में आप हमें क्या देंगे? चंद रुपए। इस बुढ़ापे में हम उन रुपयों का क्या करेंगे? हमारी दूसरी बेटी अमेरिका में रहती है। हम चाहते हैं कि जब तक हम जीएँ, मुझे व मेरी पत्नी को हर वर्ष अमेरिका आने-जाने का मुफ़्त टिकट मिले, मैं मिनिस्टर साहिब से भी इस विषय में बात करूँगा।'

विमल महाजन की इच्छा हुई कि सब काम-धाम छोड़कर वापस चले जाएँ। इंसान इतना स्वार्थी भी हो सकता है! ये भावनाविहीन लोग इस हादसे से अपना-अपना स्वार्थ सिद्ध करने की कोशिश में लगे हैं। पर वे तो यह सारा काम अपने सहयोगियों को श्रद्धांजलि के रूप में कर रहे थे। उन्हें यह सब करना ही होगा। धैर्य के साथ...।

लंदन के विक्टोरिया अस्पताल का एक हिस्सा। वहाँ लाशें इकठ्ठी की गई थीं। लाशें! लाशें!! गहरे नमकीन पानी में से निकाले गए विकृत शरीर। कौन कैसे पहचान कर पाएगा! भगवान ने कितनी दर्दनाक मौत लिखी थी, कुछ इंसानों के लिए! नवजात शिशु से लेकर सत्तर वर्ष तक की बूढ़ी लाशें। कहीं हाथ ग़ायब है तो कहीं टाँग नदारद। कहीं केवल धड़ ही है—ऊपर और नीचे के दोनों ही हिस्से गायब। किसी की अँगूठी पहचानने की कोशिश की जा रही थी, तो किसी का लॉकेट।

केवल एक लाश साबुत मिली थी। अपने मासूम चेहरे पर अपार दर्द लिए नैंसी, माँ और तीन छोटी बहनों का पेट भरने वाली नैंसी। चेंबूर की झोंपड़पट्टी से ऊँची उठी नैंसी। बिन बाप की बेटी नैंसी। कमज़ोर नारी होते हुए भी बलवान पुरुषों से कहीं अधिक पौरुषपूर्ण नैंसी। अब कभी भी खड़ी न हो पाएगी। माँ पछाड़ खाकर गिर पड़ी और सँभली। एक सच्चे ईसाई की भाँति वीरता

दिखाई। बेटी की लाश को चूमा। बूढ़ी कोख में हलचल हुई। अपना पराया हो गया। किंतु अभी तीन बेटियाँ और घर में हैं। एक ने इसी साल बी॰ए॰ किया है, बाकी दोनों स्कूल में हैं। उनके लिए माँ को मजबूत बनना है। बेटी को घर ले जाने की तैयारी करने लगीं।

चेहरों पर निराशा साफ़ दिखाई देने लगी थी। किसी भी और लाश को पहचानना लगभग असंभव-सा लग रहा था। फ़ैसला किया गया कि सभी लाशों का सामूहिक क्रिया-कर्म किया जाए। यह भी तय किया गया कि क्रिया-कर्म सागर-तट पर ही होगा और वहीं मरने वालों की याद में एक स्मारक भी स्थापित किया जाएगा ताकि विश्व को चेतावनी मिले कि आतंकवाद क्या कर सकता है।

विमल महाजन धम्म से कुर्सी पर बैठ गए। रिश्तेदारों की दिक़्क़तें दूर करते, ब्रिटिश सरकार व एअर लाइन अधिकारियों से संपर्क व बातचीत करते उनका शरीर व दिमाग़ दोनों ही थक गए थे। उस पर इतनी सारी लाशों का सामूहिक क्रिया-कर्म, उन्होंने आँखें मूँद लीं।

'मिस्टर महाजन!'

'जी।' उन्होंने आँखें मूँदे ही पूछा।

'आपसे एक सलाह चाहिए।'

'कहिए।' नेत्र खुले।

'जिस काम के लिए आए थे, वो तो हो गया। ज़रा बताएँगे, यदि शॉपिंग वगैरह करनी हो तो कहाँ सस्ती रहेगी? नए हैं न...।

उसके आगे बात सुनने की ताक़त विमल महाजन में नहीं थी।

हाउंसलो हाइ स्ट्रीट पर पचास-सौ की गिनती बढ़ने से कोई विशेष अंतर नहीं पड़ता। हर काम यथावत् जारी है। डिक्संज, बूट्स, मार्क्स, वुलवर्थ हर जगह कुछ अनजाने चेहरे दिखाई दे रहे थे। कल सुबह तो वापस बंबई चले जाना है। सभी यथासंभव सामान बटोरने में लगे थे।

लंदन में गर्मियों में भी सूर्य-देवता आँख मिचौली खेलते रहते हैं। आज उन्होंने पूर्ण विश्राम करने का निर्णय ले लिया है। बादल आसमान में चहलक़दमी कर रहे थे। एअरपोर्ट पर एअरलाइन के काउंटर पर भी जो नज़ारे थे, वे कुछ कम क्षोभ पैदा करने वाले नहीं थे। सभी यात्री अधिक-से-अधिक सामान के साथ चेक-इन करने की कोशिश कर रहे थे। काउंटर क्लर्क शौक़त अली जी को समझा रहा था।

'मिस्टर, पच्चीस किलो का तो आपका टीवी ही है। कुल मिलाकर साठ किलो वज़न है आपके सामान का; और हैंडबैग अलग। आप केवल बीस किलो सामान ले जा सकते हैं।'

'मगर मैं तो यहाँ अपने भाई की लाश पहचानने आया हूँ। हमारा केस फ़र्क है।'

'यह भाई की मौत का वज़न से क्या संबंध है?' एक बार फिर विमल महाजन को ही जाकर अनुरोध करना पड़ा। क्षुब्ध विमल महाजन जैसे-तैसे सबको समझाकर यात्रियों को चेक-इन करवा पाए।

विमान ने उड़ान भरी। सीट-बैल्ट बाँधने के संकेत बंद हुए, तो केबिन में हलचल बढ़ने लगी। विमल महाजन अपनी रिपोर्ट लिखने में व्यस्त थे। यात्रियों को खाना दिया गया। विमल महाजन केबिन का मुआयना कर रहे थे। मिसेज वाडेकर ने खाने को छुआ तक नहीं था। वह अपने बेटे की लाश को दूल्हा नहीं बना पाई थीं। लाश की शिनाख़्त ही नहीं हो पाई।

दीपिंदर दस दिन में दो-दो लाशों के क्रियाकर्म के ग़म से उबर नहीं पाया था।

कुछ यात्री ग़म ग़लत करने के लिए पैग-पर-पैग चढ़ा रहे थे।

'यार, पी ले आज, जी भरके। हमें कौनसे पैसे देने हैं। यह काम अच्छा किया है एअरलाइन ने।'

विमल महाजन थोड़ा और आगे बढ़े।

'क्यों ब्रदर, आपने कौनसा वीसीआर लिया?'

'मुझे तो एनवी 450 मिल गया।'

'बड़ी अच्छी क़िस्मत है आपकी। मैंने तो कई जगह ढूँढ़ा। आख़िर में जो भी मिला, ले लिया। हमें कौनसा बेचना है!'

'...'

'...'

'आपने सोनी ढूँढ ही लिया। कितने इंच का लिया?'

'27 इंच का। और आपने?'

'हमारे भाग्य में कहाँ जी! जेवीसी का लिया है। पर देखने में अच्छा लगता है। फिर च्वॉइस कहाँ थी!'

मौसम में थोड़ी ख़राबी हुई, यात्रियों को एक झटका-सा महसूस हुआ। विमान 'ब्लैक सी' के नज़दीक उड़ान भर रहा था।

33-A, flat No: 2 Spencer Road, Harrow & Wealdstone, Middlesex, HA3 7AN, (U. K.)

मोबाइल : 07868738403;

ईमेल–kahanikar @gmail.com/ kathuk@gmail. com;

वैबसाइट–www. kathauk. connect.to

दिनाक्षी अरोड़ा 'सहर'

ज़िंदगी

ज़िंदगी
और मेरे ताअल्लुकात का हिसाब
मुश्किल है
क्या कहूँ क्या न कहूँ
इस बात का जवाब मुश्किल है
कि ज़िंदगी मुझे झेलती आई है
कि मैं ज़िंदगी को...।

दामन पकड़ना चाहा ज़िंदगी का कभी
तो इस ने हाथ झटककर पीछा छुड़ाया
हाथ बढ़ाया जो कभी इसने खुद
तो मुझे ही जीना नहीं आया
ज़िंदगी और मेरे ताअल्लुकात का
हिसाब मुश्किल है
क्या कहूँ क्या न कहूँ
इस बात का जवाब मुश्किल है
कि ज़िंदगी मुझे रास नहीं आई है
कि मैं ज़िंदगी को...।

दूर से जो देखा तो लगा
ज़िंदगी में ख़ुशियाँ हैं बेशुमार
नज़दीक से महसूस किया
तो मिले ग़म और आँसुओं के ख़ार
ज़िंदगी और मेरे ताअल्लुकात का
हिसाब मुश्किल है
क्या कहूँ क्या न कहूँ
इस बात का जवाब मुश्किल है
कि ज़िंदगी मुझे समझ नहीं पाई है
कि मैं ज़िंदगी को...।

जैसा तसव्वुर किया था
ज़िंदगी का मैंने
वैसी ये ज़िंदगी मेरी नहीं
ज़िंदगी चाहती होगी जैसा मुझे
वैसी तो मैं भी नहीं।

ज़िंदगी और मेरे ताअल्लुकात का
हिसाब मुश्किल है
क्या कहूँ क्या न कहूँ
इस बात का जवाब मुश्किल है
कि ज़िंदगी मुझे काटती आई है
कि मैं ज़िंदगी को...।

501 **टावर** 10, **विपुल ग्रीन्स**
सोहना रोड, सेक्टर 48
गुड़गाँव (हरियाणा)

मिट्टी

मीनाक्षी एम॰ सिंह

ना वो बैठक है, ना गप्पें हैं
बियाबाँ वो सब चौबारे हैं
तीन-तीन घर हैं उनके
फिर भी क्यूँ वो बंजारे हैं।

वो मोड़ भी वहीं,
वो कुलफ़ी वाला भी
न जाने कब यह ज़माने बदल गए
आँखें भी वही,
आँसू वही नमकीन-से
बस उनके दर्द बदल गए,
माने बदल गए।

चंद सिक्कों के फेविकोल से
सब रिश्तेदार हमारे हैं
ख़ाके ज़मीन जब एक है सबकी
फिर क्यूँ ज़िंदगी के बँटवारे हैं।

जड़ों से दूर जितना भी भागोगे
मुरझा जाओगे, खिल नहीं पाओगे
राख होकर आओ, या ताबूत में
आख़िर तो
अपनी मिट्टी में ही समाओगे।

सी-119, **ट्रूडेज़ विला**
सेक्टर-50, **मेफील्ड गार्डन्स**
गुड़गाँव 122018 (**हरियाणा**)

बिटिया

आज
बहुत अरसे बाद
अपनी कविताओं की डायरी उठाई
तो पन्ना-दर-पन्ना
पढ़ती चली गई
भावनाओं के सागर में
डूबने-सी लगी
कितने ख़त लिखे थे मैंने–
खुद को, पापा को, माँ को,
बहन को, दादी को, सासू माँ को
नानाजी को, बेटे को
पत्र ज्यों
विचारों का समुद्र समेटे हों,
पर बेटी को....
कैसे कुछ नहीं लिखा
मैंने अपनी बेटी के लिए!
क्या मेरे मन में
भावनाओं का ज्वार नहीं उठा
कभी?
क्या अंतर के आँगन में
भावों का मेला नहीं जुटा कभी?
असमंजस में थी...

एक बार फिर पढ़े कुछ पन्ने,
वो पन्ने
जिनमें मेरी खुद की बात थी
जिनमें बचपन था, विदाई थी,
माँ होने की सौग़ात थी
जिनमें की थीं मैंने
अपनी माँ से बातें
जिनमें शरारत-भरे दिन थे
स्नेह-भरी रातें,
जिनमें ननिहाल की थीं यादें
जिनमें किए थे खुद से वादे,
जिनमें अनगिनत प्रश्न
और प्रश्नों से झाँकते जवाब थे
जिनमें
एक सुंदर दुनिया के ख़्वाब थे...
ज्यों-ज्यों
मैं पढ़ती जाती थी
आ रहा था आँखों के सामने
एक चेहरा..
नहीं, मेरा नहीं
चेहरा मेरी बेटी का!
क्यों?
सारे उत्तर ज्यों
यकायक मिल गए
प्रश्नों के बादल छँटे,
संतोष के फूल खिल गए
हर पंक्ति के पीछे छिपी भावना
लगी सच बिटिया के लिए भी
शायद इसीलिए
अलग से नहीं लिख पाई कभी
आत्म-ग्लानि के
सारे पन्ने धुल गए
प्रश्नों के बीच
प्रसन्नता के फूल खिल गए

बिटिया,
मेरी डायरी का हर पन्ना तेरा है
हाँ, यही सच्चाई है,
मेरी गुड़िया,
तू मेरी ही तो परछाई है!

रिश्तों की डोरियाँ

रिश्तों की डोरियाँ
पतली, लंबी, कच्ची, नाज़ुक
सँभालना मुश्किल!
एक-एक डोरी को
अलग-अलग
दूर-दूर इकट्ठा करके
रखा था मैंने
फिर कैसे
एक छोटे डिब्बे में
बंद हो गईं सब!
किसने किया ये?
कब?
किस डोरी को सुलझाऊँ?
किसे निकालूँ पहले
सभी तो सुंदर हैं–
अमूल्य हैं मेरे लिए!

ए 202 **पार्क व्यू सिटी**-2
सोहना रोड, गुड़गाँव (हरियाणा)
मो॰ 09582845000

मेरी माँ

डॉ॰ मीना अग्रवाल

'मुझे अब कुछ ऐसा लगने लगा है विजयपाल कि जिन्हें हम हार्दिक रिश्तों का नाम देते हैं, उनके कुछ सामाजिक संदर्भ भी होते हैं। यह सामाजिक संदर्भ बदल जाएँ तो रिश्तों का यथार्थ भी बदल जाता है।' प्रो. शिवराज ने अपनी ऐनक के मोटे-मोटे शीशों के भीतर से मेरी ओर झाँकते हुए कहा। अभी मुँह-अँधेरे वाला तड़का था और हम दोनों प्रतिदिन की भाँति आज भी चहलक़दमी करते हुए बस्ती से बहुत दूर निकल आए थे और थोड़ी देर सुस्ताने के लिए मैदान की हरी-हरी घास पर बैठ गए थे। हमारे चारों ओर प्रभात का मटमैला उजाला फैलने लगा था। सूरज अभी निकला नहीं था, लेकिन पूर्वी क्षितिज पर छाई लालिमा बता रही थी कि अब धरती पर धूप की उजली चादर फैलने ही वाली है।

मैंने प्रो॰ शिवराज के चेहरे की ओर निहारा। वह आज पहले से कहीं ज़्यादा गंभीर मुद्रा में दिखाई दे रहे थे। मुझे लगा कि व्यक्ति के पेशे का प्रभाव उसके चेहरे पर पड़े बिना नहीं रहता। किसी खिलाड़ी की मुखाकृति पर वह गंभीरता नहीं होगी, जो किसी अध्यापक और वह भी मनोविज्ञान पढ़ानेवाले अध्यापक के चेहरे पर आपको मिल जाएगी।

मैं प्रो॰ शिवराज को उनके रखरखाव के कारण पसंद करता आया हूँ। वह अपनी मम्मी के साथ मेरे पड़ौस में अकेले रहते हैं। वे बिना ज़रूरत कभी नहीं बोलते, और चूँकि बिना ज़रूरत नहीं बोलते, इसलिए बोल-बोलकर दूसरों को थकाते भी नहीं। मैं जानता हूँ, अप्रिय बातें सुनने से जितनी थकान होती है, उतनी थकान तो बोलने से भी नहीं होती। मुझे शिवराज इसलिए पसंद हैं कि वे ज़्यादा नहीं बोलते। ज़रूरत से अधिक एक वाक्य भी नहीं। अधिक बोलनेवाले अपनी और अपने सुननेवालों की जितनी एनर्जी नष्ट करते हैं, यदि वह किसी अच्छे काम में लगती तो...।

मैं अभी अपने दिमाग़ में अपना यह वाक्य पूरा भी नहीं कर पाया हूँ कि प्रो॰ शिवराज ने धीरे से मेरे कंधे पर हाथ रखते हुए पूछा–'क्यों विजयपाल! तुमने सुना कि मैंने अभी-अभी क्या कहा था?'

'हाँ!' मैंने उत्तर देते हुए कहा, 'आपने कहा था कि हम लोग जिन्हें हार्दिक रिश्तों का नाम देते हैं, उनके कुछ सामाजिक संदर्भ भी होते हैं। जब यह संदर्भ बदल जाते हैं, तो रिश्तों का यथार्थ भी बदल जाता है। किंतु मैं आपकी बात पूरी तरह समझा नहीं हूँ। आप किस पृष्ठभूमि में ऐसा कह रहे हैं?'

'बताता हूँ।' प्रो॰ शिवराज ने उत्तर दिया। और वह कहीं बहुत गहराई में उतर गए। मैं प्रतीक्षा करता रहा कि वे अपनी अनुभूति की विस्तृत चर्चा करेंगे और यह बताएँगे कि उन्होंने ऐसा किस आधार पर अनुभव किया है।

मैंने एक प्रश्न-भरी दृष्टि उनके चेहरे पर डाली। 'मम्मी ज़िद कर रही हैं कि मायके से पत्नी को ले आऊँ। लेकिन वह नहीं जानतीं कि शोभा को पत्नी की तरह मेरे साथ रहना पसंद नहीं है। फिर मैं उसे उसकी इच्छा के विरुद्ध मजबूर क्यों करूँ। हर व्यक्ति को अपनी इच्छा के अनुसार जीने की स्वतंत्रता मिलनी चाहिए ना।'

प्रो॰ शिवराज ने अब एक नया प्रसंग छेड़ दिया था। मुझे लग रहा था कि उनकी पहली बात से इस बात का कोई संबंध नहीं है। मुझे मालूम था कि शोभा, शिवराज की पत्नी बनकर खुश नहीं थी। वह कुछ दिन रहकर वापस मायके चली गई थी और फिर लौटकर वापस नहीं आई थी। शिवराज कई बार उसे लेने गए, पर वह नहीं आई। अब तो इस घटना को इतने वर्ष बीत गए हैं कि शायद ही किसी को यह याद रहा हो कि प्रो॰ शिवराज का एक दिन विवाह हुआ था।

'मुझे लगता है कि बहुत कम जोड़े हैं, जो

एक-दूसरे को मन से अपनाते हैं। कई बार तो सामाजिक परंपरा ही उन्हें अंत तक जोड़े रखती है।' प्रो॰ शिवराज ने कुछ सोचते हुए धीमे स्वर में कहा–'लेकिन सबके लिए तो यह बात सच नहीं है शिवराज। कई जोड़े मतभेद के बाद भी सामाजिक कारणों से एक-दूसरे से जुड़े रहते हैं, लेकिन कई दूसरे वास्तव में प्रेम की डोर से ऐसे बँध जाते हैं कि फिर अलग नहीं होते।' मैंने शिवराज की बात में संशोधन करने का प्रयास किया।

शिवराज थोड़े और गंभीर हो गए, बोले, 'मैं उनकी बात नहीं कर रहा हूँ, जो वास्तव में प्रेम के रिश्ते से जुड़े हैं, उनके संबंध में कह रहा हूँ, जो समाज की परंपराओं के कारण एक-दूसरे को पसंद न करते हुए भी साथ-साथ रहने पर मजबूर होते हैं। वे साथ-साथ जीते तो हैं, पर शायद जीते नहीं हैं। मैंने शोभा को यह मानसिक कष्ट झेलने से बचा लिया है। पर मम्मी वह सब नहीं जानतीं। मैं उन्हें बताता भी नहीं, तुम्हीं बताओ कि मैं यह सब कहकर उन्हें क्यों कष्ट दूँ? जबकि सच यह है कि शोभा मुझे पसंद नहीं करती और शायद मैं भी। टकराव झेलकर साथ-साथ रहने से बेहतर है कि हम अपने-अपने ढंग से जीवन गुज़ारते रहें। लेकिन कभी-कभी मुझे यह भी लगता है कि उम्र के साथ-साथ उसकी पसंद, नापसंद, उसकी रुचियाँ भी बदलेंगी; और शायद मेरी भी। तब यह हो सकता है कि शोभा स्वयं मेरे पास चली आए या मैं ही बदली हुई स्थिति में उसे स्वयं ले आऊँ! आदमी का कुछ पता तो होता नहीं है। उसकी सोच में कब क्या बदलाव आए, कोई कुछ कह नहीं सकता।'

मैंने शिवराज की लंबी बात सुनी तो पूछा, 'क्या इसी घटना को लेकर तुम रिश्तों के सामाजिक संदर्भ की बात कर रहे थे शिवराज?'

उन्होंने कहा, 'नहीं, मुझे पिछले कुछ दिनों से ऐसा लग रहा है कि मुझे अपनी मम्मी से अब वह प्रेम नहीं रहा है, जो पहले था, बस एक सहानुभूति रह गई है, उनके प्रति।'

शिवराज की बात सुनकर मैं चौंक उठा। सोचा अजीब व्यक्ति है यह... पत्नी को प्रेम नहीं दे सका। अब माँ से प्रेम-संबंध तोड़ने को तैयार है? मानव के प्रति निराशा का भाव तो उत्पन्न नहीं हो गया है इसमें। विवाह की असफलता कई बार आदमी को नकारात्मक बना देती है।

कुछ क्षण हम दोनों के बीच गहरी चुप छाई रही। हलकी धूप मैदान में फैलने लगी थी। मैं तरह-तरह की भ्रांतियों में फँसता जा रहा था शिवराज के मामले को लेकर। अचानक उनकी आवाज़ मेरे कानों में आई, 'तुम जानते हो, मैं मम्मी को कितना प्यार करता आया हूँ। शायद दुनिया में सबसे ज़्यादा... पर अब मुझे लगता है कि यह प्रेम अब मात्र सहानुभूति में बदल रहा है।'

'क्यों?' मैंने जिज्ञासापूर्वक शिवराज से पूछा। वह कुछ नहीं बोले। मौन साधे बैठे रहे। कई बोझिल क्षण हम दोनों के बीच से गुज़र गए।

'मम्मी ने कई दिन पहले एक बहुत ही आश्चर्यजनक कहानी सुनाई थी मुझे।' मौन की परत तोड़ते हुए शिवराज ने अब बात का एक और क्रम शुरू कर दिया था। मुझे लगा, इस बार वह फिर प्रसंग बदल रहे हैं। शायद प्रेम के बदले माँ के प्रति सहानुभूति उत्पन्न होनेवाली बात वह मुझे बताना नहीं चाहते हों। मैंने कुरेदना भी नहीं चाहा उन्हें। पूछा, 'क्या कहानी सुनाई थी मम्मी ने?'

बोले–'यह तो तुम जानते ही हो कि मम्मी राजकीय महाविद्यालय में अध्यापिका रही हैं। सरकारी सेवा में होने के कारण उनका समय-समय पर स्थानांतरण भी होता रहा है। वह बताती थीं कि अब से कोई पैंतीस

वर्ष पहले जब उनका लखनऊ से इलाहाबाद के लिए स्थानांतरण हुआ, तभी उनके जीवन में एक ऐसी घटना घटित हुई, जिसे वे कभी भूल नहीं पाईं?'

शिवराज की बात सुनकर मेरे मन में उत्सुकता का भाव जाग उठा? पूछा, 'मम्मी ने क्या बताया? कौनसी घटना?'

'वह बताती थीं,' शिवराज ने बात आगे बढ़ाते हुए कहा, 'ज्वॉइन करने के बाद जब मैं तीसरी बार वहाँ जा रही थी, तो गाड़ी की प्रतीक्षा में प्लेटफ़ार्म की बैंच पर अपने सामान के साथ बैठ गई। तभी एक और महिला झपटती हुई मेरी बैंच तक आई और मुझसे काफ़ी निकट होकर बैठ गई। मैंने देखा, उसकी गोद में एक बच्चा था, शायद दो चार-दिन का ही रहा होगा वह। महिला देखने से काफ़ी फटेहाल लग रही थी। मैं उससे बचने के लिए बैंच पर थोड़ा और सरक गई।'

उसने मुझसे पूछा, 'तुम कहाँ जा रही हो, बहन?'

मैंने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया, 'इलाहाबाद।'

वह बोली, 'क्या करती हो इलाहाबाद में?'

'टीचर हूँ।' मैंने उत्तर दिया।

यह सुनकर वह चुप हो गई और आँचल से ढककर अपने बच्चे को दूध पिलाने लगी। इसी बीच एक और गाड़ी प्लेटफ़ार्म पर आकर रुकी। मैं नहीं जानती, वह गाड़ी किस ओर जाने वाली थी, किंतु जैसे ही गाड़ी ने सीटी दी और गार्ड ने हरी झंडी दिखाई, महिला तेज़ी से उठी और भागती हुई गाड़ी में सवार हो गई। गाड़ी धीरे-धीरे रेंगनी शुरू हो गई थी। मैंने देखा कि उसका बच्चा एक पोटली की भाँति उसी जगह बैंच पर रखा था, जिस जगह वह महिला बैठी थी। बिजली की गति से मेरे मन में विचार आया कि शायद महिला जल्दी में अपना बच्चा बैंच पर भूल गई। मैंने बच्चे को उठाया और तेज़ी से गाड़ी के पीछे लपकी, लेकिन गाड़ी तेज़ रफ़्तार पकड़ चुकी थी और अब वह मेरी पहुँच के बाहर थी।'

'अरे यह तो बड़ी अजीब बात है?' मैंने इस पूरी घटना को सुनकर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की।

'लेकिन प्रश्न यह है' मम्मी ने मुझसे कहा, 'क्या वह भूलवश बच्चे को बैंच पर छोड़ गई थी।' शिवराज ने मम्मी द्वारा बताई गई घटना का विवरण देते हुए कहा, 'मैं ऐसा नहीं मानती। कोई माँ अपनी संतान को इस प्रकार भूलवश नहीं छोड़ सकती। शायद उसने ऐसा जानबूझ कर किया था।'

मम्मी बच्चे को लेकर फिर वापस बैंच पर आ गईं। वह कहती हैं कि कई विचार एक साथ उनके मन में आए। हो सकता है कि यह बालक उस महिला की अवैध संतान हो? हो सकता है कि वह इतनी निर्धन हो कि बच्चे का पालन-पोषण न कर सकती हो। मम्मी को याद आया कि महिला ने उससे पूछा था कि वह क्या करती है और यह जानकर वह संतुष्ट हो गई कि अध्यापिका होने के नाते वह बच्चे का भली-भाँति पालन-पोषण कर सकती है। तभी बैंच पर वह उसे सोता छोड़ गई। यह भी माँ की ममता का एक अद्‌भुत पहलू ही है ना।'

'फिर क्या हुआ उस बच्चे का?' मैंने जिज्ञासापूर्वक जानना चाहा।

'मम्मी ने बताया था कि वह उस बच्चे को अपने साथ ले आईं। क्योंकि कोई और रास्ता ही उनके पास था ही नहीं। मानव-शिशु था, उसे यूँही तो नहीं छोड़ा जा सकता था ना।' शिवराज कुछ क्षण चुप रहकर फिर बोले।

'मम्मी ने उस बच्चे को पाला-पोसा, लिखाया-पढ़ाया, लेकिन उन्होंने जब मुझे यह रहस्य बताया कि वह बच्चा कोई और नहीं, मैं था तो जानते हो क्या हुआ? मैं अंदर से टूट-सा गया। मेरी माँ वह नहीं है, जिसे मैं अब तक माँ समझता आया हूँ। यह एक भली औरत है, जिसने एक अनाथ बालक के लिए स्वयं विवाह नहीं किया और अपना सारा जीवन उसी के लिए अर्पित कर दिया।'

मैंने देखा, यह सब कहते हुए शिवराज की आँखों में आँसू भर आए थे।

उसने रूमाल से अपनी आँखें पोंछीं। मैंने देखा, फिर वही गंभीरता उनके चेहरे पर लौट आई थी, जो अभी कुछ क्षण पहले थी, चिंतन से भरी हुई।

'इसीलिए तो मैं कहता हूँ विजय,' शिवराज की आवाज़ मेरे कानों में आई, 'संदर्भ बदल जाने से रिश्ते का यथार्थ बदल जाता है। अब मुझे मम्मी के प्रति प्रेम इतना नहीं है, जितनी सहानुभूति है। एक भली महिला के नाते शायद अपनी असली माँ को पाने की ललक पैदा हो गई है मुझमें।' शिवराज ने वाक्य पूरा किया तो अनायास मेरे मुँह से निकला-'शायद...शायद...।'

16 **साहित्य विहार**
बिजनौर (उ०प्र०)
मो० 07838090237

विस्थापन का दर्द

राजेंद्र मिश्र

वह रोज़ आकर काम करती है और चली जाती है। किसी से कुछ नहीं बोलती। यही उसका रुटीन है। वीरेश रोज़ देखता है कि वह कौन है, कहाँ से आई है। अभी एक सप्ताह पहले ही उसने ज्वाइन किया है। इन दिनों मल्टीनेशनल कंपनियों में रिसेप्शन अटैंड करने के लिए योग्यता के आधार पर नहीं, सुंदरता के कारण युवतियाँ भरती की जा रही हैं। वह भी बहुत सुंदर है, पर हमेशा उदासी से घिरी रहती है। वीरेश रोज़ सोचता है, उससे बात करे, पर कुछ कह नहीं पाता। एकदिन साहब के सहायक ने कहा, 'निर्मलाजी, साहब ने याद किया है।' वह उठकर चैंबर में गई है। लौटते ही उसका चेहरा जैसे बहुत उदास और उतरा हुआ लग रहा था। अब वीरेश नहीं रह सकता। वह निर्मला से बात करके ही रहेगा।

उस दिन निर्मला कम-से-कम दो तीन बार साहब के चैंबर में गई है। रविकांत एक चलता-पुर्जा आदमी है। यही वजह है कि वह यहाँ बरसों से जमा हुआ है। 'इनडोर' में कई प्रॉडक्ट होते हैं निर्मला को रिसैप्शन में रखा गया है। वह मुस्कुराकर ही लोगों को रिसीव करती है। प्रॉडक्ट दिखाने के लिए भी अधिकतर लड़कियों को ही रखा गया है। आज वीरेश अपने को रोक नहीं पाया है। वह इस कंपनी में पिछले साल से ही काम कर रहा है। हर रिसैप्सनिस्ट चार-छः महीने में छोड़कर चली जाती है। पता नहीं निर्मला यहाँ कब तक रह पाएगी?

ऑफ़िस ख़त्म होने के बाद भी चंद्रेश वहीं पर है। वह रविकांत का हर बात में समर्थन करता है। उसने वीरेश से कहा कि वह वहाँ क्यों रुका है। वीरेश ने उससे ही सवाल किया आप और निर्मलाजी यहाँ क्यों रुके हैं। चंद्रेश ने कुछ नहीं कहा, वह साहब के चैंबर में गया है। वीरेश ने अवसर पाकर निर्मला से कहा–'आप हर रोज़ समय पर चली जाती हैं, आज क्यों रुकी हैं?'

'साहब ने रुकने को कहा है।'

'क्यों, क्या कोई काम है? आपकी टेबल तो खाली है।'

'कोई काम नहीं है। बस उनके साथ एक क्लाइंट के यहाँ जाना है।'

'निर्मलाजी, यह आदमी अच्छा नहीं है। पता नहीं किस क्लाइंट के यहाँ ले जाए।'

'आप वीरेश हैं।'

'हाँ, आपने ठीक पहचाना। दरअसल, मुझे आपका नाम आज ही मालूम हुआ है।'

'मैं जानती हूँ, जब मैं आफ़िस आती थी, आप मेरी ही ओर देखते थे। आज भी जब मुझे चैंबर में बुलाया गया, मेरी ही ओर आपका ध्यान था।'

'आप ग़लत न लें। आप बहुत उदास रहती हैं, इसीलिए मेरा ध्यान आपकी ओर जाता रहा है।'

'आप मुझे फ़ॉलो तो नहीं कर रहे।'

'आप इस तरह की बात क्यों करती हैं। आपको यह जल्दी ही पता लग जाएगा कि मुझे आपकी कितनी फ़िक्र है।'

चंद्रेश आ गया था। उसने कहा था कि निर्मला आज जा सकती हैं। क्लाइंट से मिलने का वक़्त फिर कभी तय हो जाएगा। आज वे सज्जन कहीं व्यस्त हैं। प्रोग्राम पोस्टपोंड हो गया है। वीरेश ने निर्मला को कॉफ़ी का ऑफ़र दिया, जिसे उसने मंजूर कर लिया। वे ऑफ़िस से कुछ दूर एक कॉफ़ी हाउस में बैठे हैं। वीरेश ने ही बात शुरू की है–'बुरा न मानें, मैं आपके बारे में कुछ जानना चाहता हूँ।'

'मेरे पास बताने को कुछ नहीं है। मैं श्रीनगर से एक माह पहले ही दिल्ली आई हूँ। वहाँ आतंकवादियों ने हमारा रहना मुश्किल कर दिया। हमारे परिवार को

भागकर आना पड़ा।'

'आपके परिवार में कौन है?'

'मेरा भाई तो बहुत पहले ही आकर लुधियाना में बस गया था। वहीं उसकी शादी हुई है। मैं अपने माता-पिता के साथ यहीं गोल मार्केट के पास एक सरकारी क्वार्टर में रहती हूँ।'

'आपसे आज चैंबर में साहब ने क्या बात की?'

'कुछ नहीं। कह रहे थे कंपनी के जॉब में मार्केटिंग करना पड़ता है। वे चाहते हैं, कोई सुंदर लड़की भी साथ हो। बस कुछ समय वे अच्छा फ़ील करते हैं। कोई ख़ास बात नहीं है। अगर तुम साथ चलो तो हमें कोई अच्छा-सा ऑर्डर मिल सकता है। पार्टी बड़ी है।

'क्या आप किसी व्यक्ति के चेहरे को पढ़ सकती हैं।'

'अच्छी तरह पढ़ सकती हूँ वीरेश जी। साहब मुझे तो लंपट मालूम पड़ते हैं। पर मैं भी सतर्क रहती हूँ। कश्मीर में मैंने बहुत भोगा है। एक आतंकी ने तो मेरे अपहरण की भी कोशिश की थी। वह मुझसे निकाह करना चाहता था।'

'फिर क्या हुआ।'

'मेरा भाई तो पहले ही पंजाब आ गया था। उसने पापा से कहा था कि वे भी कश्मीर छोड़ दें, पर वे राजी नहीं हुए। वे उस ज़मीन को नहीं छोड़ना चाहते थे, जिस पर वे अपने जन्म से ही रह रहे थे।'

'अब तो उन्हें अपनी ज़मीन छोड़नी पड़ी।'

'केवल मेरे लिए। माँ ने कहा था कि यहाँ कोई सुरक्षा नहीं बची है। वह आतंकी लगातार धमकी दे रहा था। हमने पुलिस में भी रिपोर्ट की, पर कोई सुनवाई नहीं हुई। इन लोगों से सब डरते हैं।'

'आपको कश्मीर छोड़ना पड़ा?'

'हाँ, मेरे पास इससे अधिक बताने को कुछ नहीं है। मुझे नौकरी की तलाश थी। यहाँ मिल गई और मैंने ज्वाइन कर लिया। पापा अब कोई काम करने लायक नहीं रहे हैं।'

वीरेश ने देखा निर्मला के चेहरे पर विस्थापन का दर्द उभर रहा है। उसने कहा–'मैं आपके पापा से मिलना चाहता हूँ।'

'आपने अपने बारे में कुछ नहीं बताया।'

'निर्मलाजी, मैं दिल्ली का ही हूँ। कश्मीर से जो लोग भागकर दिल्ली आ रहे हैं, मैं उनके पुनर्वास की व्यवस्था करता हूँ। मेरे पिता मुंबई में व्यवसाय करते हैं। मैं एक मानव-संगठन में काम करता हूँ। पिता पर बोझ नहीं बनना चाहता, इसलिए यह सर्विस भी ज्वाइन कर ली है।'

वीरेश हँस पड़ा। पहली बार उसने देखा निर्मला अपनी उदासी से बाहर निकल रही है। वह उस शाम निर्मला के घर गया था। उसकी माँ बीमार है और पिता बहुत असहाय से लग रहे हैं। निर्मला ने उसका परिचय अपने पापा से कराया। वीरेश ने कहा–'मुझे अफ़सोस है आपको अपना घर छोड़ना पड़ा।'

'हमारी सरकार सेक्युलर है : हम लोग उसके दायरे में नहीं आते।' उनके बोलने में गहरा व्यंग्य है। माँ ने कहा–'हमारे घर पर आतंकवादियों ने कब्ज़ा कर लिया। हमें वहाँ से निकाल दिया। उन्होंने तो हमारी बेटी का अपहरण ही कर लिया था। किसी तरह वहाँ से भागकर आए हैं। वीरेश बहुत देर तक उनसे बातें करता रहा। निर्मला के माँ-बाप उससे मिलकर बहुत आश्वस्त लग रहे थे। वीरेश ने कहा कि वह अभी अकेला है। शुरू से ही अपने पापा के व्यवसाय में उसकी कोई रुचि नहीं रही। वह विस्थापितों की समस्याओं से जुड़े एक संगठन में काम करने दिल्ली आया है। अपना ख़र्च ख़ुद निकालने के लिए ही उसने यह सर्विस की है। वह कभी-कभी यहाँ आता रहेगा। इस तरह के आश्वासन के बाद वह लौट आया।

निर्मला आज आफ़िस नहीं आई है। वीरेश की आँखें लगातार उसे देख रही हैं। साहब ने उसे कई बार याद किया है। रविकांत ने बाहर निकलकर वीरेश से कहा–'मुझे पता है, कल तुम निर्मला के साथ गए थे। तुम्हें पता होगा, आज वह क्यों नहीं आई।'

'मैं नहीं जानता।'

'मैं इन विस्थापितों को अच्छी तरह जानता हूँ। उदासी का आवरण ओढ़कर सहानुभूति पाने की कोशिश करते हैं। आज उसे मेरे साथ कहीं जाना था। वह जानबूझकर नहीं आई। अगर उसे नौकरी करनी है तो उसे अपनी ज़िम्मेदारी तो निभानी ही होगी।'

'रविकांतजी, वह रिसैप्सनिस्ट है। आपके साथ उसका बाहर जाना ज़रूरी नहीं है।'

'अब एक ही तरह के काम से कुछ नहीं होता। हमें अपने प्रॉडक्ट बेचने हैं। उसके लिए हमें बहुत से तरीक़े अपनाने पड़ते हैं।'

वीरेश ने देखा सामने से निर्मला आ रही है। उसने रविकांत से कहा–'निर्मला आ गई है।' रविकांत तेज़ी से अपने चैंबर में चला गया।

अपनी सीट पर बैठते ही निर्मला ने कहा–'मेरी माँ की तबीयत अचानक बहुत ख़राब हो गई है। आज आना नहीं चाहती थी, पर साहब का फ़ोन था, उनके

साथ आज मुझे कहीं जाना है।'

'सावधान रहना निर्मला। तुम जहाँ भी जाओ, आज मैं तुम्हारे पीछे रहूँगा।'

'क्यों क्या कोई बात है?'

'तुम अपने ही देश में विस्थापित हो, इसका दर्द यहाँ किसी को नहीं है। ये लोग तुम्हें असहाय समझकर तुम्हारे साथ कुछ भी कर सकते हैं।'

निर्मला अचानक सहम रही है।

'वीरेश क्या कर सकते हैं?'

'तुम लड़की हो। तुम्हारा रविकांत के साथ जाना क्यों ज़रूरी है? क्या तुम इतना भी नहीं समझतीं।'

'समझती हूँ। कश्मीर में मैंने बहशी लोगों तक का सामना किया है। तुम फ़िक्र मत करो।' निर्मला अचानक डर से उबर रही थी। उसकी आवाज़ में साहस झलक रहा है।

'फिर भी निर्मला, मैं तुम्हारे साथ हूँ।'

'मैं सर्विस नहीं छोड़ सकती, वीरेश। मुझे साहब के साथ तो जाना ही पड़ेगा। अगर मेरे साथ कोई ग़लत कोशिश की गई तो मैं यह नहीं होने दूँगी। अब हर लड़की को अपना बचाव तो करना ही पड़ेगा।'

उस दिन रविकांत ने कई बार निर्मला को चैंबर में बुलाया था। शाम को वह निर्मला को अपनी कार में ले गया था। वीरेश ने उसका पीछा किया था। रविकांत को इसकी भनक भी नहीं लग सकी थी। वीरेश ने देखा कि रविकांत एक बड़ी सी बिल्डिंग में निर्मला के साथ गया है। वीरेश बाहर ही उसका इंतज़ार करता रहा।

बहुत देर तक वे दोनों बाहर नहीं आए थे। अचानक रविकांत बाहर आया। पसीने से लथपथ उसके चेहरे पर घबराहट और भय है। वीरेश समझ नहीं पा रहा क्या हुआ है। वह तेज़ी से अपनी कार में बैठ गया है। उसी पल निर्मला भी बाहर आई। उसका चेहरा परेशान है, पर उसमें दृढ़ता है। वीरेश को देखकर वह उदास हँसती है–रविकांत तेजी से निकल गया है। निर्मला ने कहा–'अच्छा हुआ तुम यहाँ हो, मुझे घर तक छोड़ दो।'

'क्या हुआ निर्मला?'

'तुम्हारा शक सही था–रविकांत मुझे ब्लैकमेल करना चाहता था। उसने मुझसे ज़बरदस्ती करने की कोशिश की इस बिल्डिंग में कोई बिजनैस डील नहीं थी। वह मुझे एक कमरे में ले गया, मैं समझ गई थी। उसके इरादे ठीक नहीं थे।'

'वह पसीने से लथपथ था, निर्मला।'

'मैं तैयार होकर आई थी, वीरेश। मैंने कश्मीर में बहुत भुगता है। कई बार मनचलों का सामना किया है। मेरे पास हमेशा अपने बचाव के लिए शस्त्र रहता है।'

'मैं समझा नहीं।'

निर्मला ने एक स्प्रिंग नाइफ़ निकालकर वीरेश को दिखाया था। वह डिफ़ैंस क्लब में भी जाती रही है। वीरेश निर्मला को लेकर उसके घर गया। माँ को तुरंत अस्पताल ले जाना पड़ेगा। वीरेश माँ को लेकर अस्पताल गया। साथ में निर्मला भी है। पापा अभी जाने की हालत में नहीं हैं। उन्हें तेज़ बुखार है। निर्मला ने कहा–'वीरेश, कल से मैंने आफ़िस छोड़ दिया है।

वह अब ट्रांसपोर्टेशन से जुड़ गया है। कश्मीर से हर रोज़ लोग दिल्ली आ रहे हैं। यह क्या हो रहा है, हमारे देश में ही हमारी सरकार अपने लोगों को सुरक्षित नहीं रख पा रही है। कश्मीर हमारा है, पर वहाँ हमारे अपने ही नहीं रह पा रहे। जिस मज़हबी आधार से भारत का विभाजन हुआ, वह अब कश्मीर झगड़े का कारण भी बन रहा है। धर्म के नाम पर कश्मीर को भारत से अलग करने की कोशिश की जा रही है। ग़ैर-मुस्लिमों को घाटी ही नहीं, कश्मीर की अन्य जगहों से भी भगाया जा रहा है। सरकार उनकी सुरक्षा नहीं कर रही है। घाटी में एक सिक्युरिटी ज़ोन बनाकर वह सख़्ती से पनप रहे अलगाववाद को दबा सकती थी, पर यह नहीं हो पा रहा। सरकार अलगाववादियों से बिना शर्त बात कर रही है। वीरेश के मन में गहरा आक्रोश है। यह उन सभी हिंदुस्तानी युवाओं के मन में भी है, जो मज़हब के आधार पर विभाजन को भी एक बड़ी राजनीतिक त्रासदी मानते हैं। सरकार कश्मीर पर कोई ग़लत समझौता नहीं कर सकती। अब मुस्लिम भी समझ गए हैं कि पाक की बजाय भारत में ही उनका भविष्य है।

कश्मीर की समस्या आतंकवाद की है, जनवाद की नहीं। वीरेश रोज़ कई युवाओं से मिलता है। अब तक वह निर्मला के लिए कोई जॉब नहीं जुटा पाया है। विस्थापितों के शिविर में कुछ लोगों की ज़रूरत है। उन्हें अच्छा पेमेंट भी किया जा रहा है। कुछ एन॰जी॰ओ॰ मिलकर यह काम कर रहे हैं। वीरेश कई दिनों बाद निर्मला से मिलने गया। उसके क्वार्टर में ताला लगा है। पड़ोस में पूछने पर एक व्यक्ति ने बताया–

'निर्मला की माँ नहीं रहीं। उसके पिता अचानक बहुत बीमार हो गए हैं। वह उन्हें लेकर अपने भाई के पास लुधियाना गई है। आपके बारे में बात कर रही थी। उसने कहा था कि अगर आप आएँ तो मैं उसका पता आपको दे दूँ। यह उसका पत्र है।'

उस व्यक्ति ने वह पत्र वीरेश को दे दिया है। वीरेश ने पत्र पढ़ा।

'वीरेश, तुम पंद्रह दिन से नहीं आए। एक दो बार मैंने मोबाइल पर तुमसे बात करने की कोशिश भी की, पर कोई रिस्पांस नहीं मिला। माँ चल बसी है। इस हादसे से पिता टूट गए हैं। मैं अकेली पड़ गई हूँ। जल्दी में उन्हें लेकर भाई के पास जा रही हूँ। अपने घर को फ़ोन नंबर भी लिखा है–निर्मला।'

पत्र छोटा है, पर बहुत कुछ कह गया है। वीरेश ने तुरंत फ़ोन लगाया। निर्मला ने ही उठया।

'मुझे दुख है निर्मला। मैं तुमसे नहीं मिल सका। तुम्हारे लिए कोई जॉब मिल जाए, तभी तुमसे मिलूँ, यह सोचकर नहीं आया। आज एक जॉब मिला है, पर अब तुम यहाँ नहीं हो।'

'वीरेश, माँ के जाने के बाद पिता अचानक बहुत गंभीर हो गए थे, पर अब वे धीरे-धीरे रिकवर कर रहे हैं। मैं अब दिल्ली वापस आने का सोच रही हूँ। मैं वह क्वार्टर नहीं छोड़ना चाहती। अच्छा है, तुमने मेरे लिए कोई जॉब ढूढ़ लिया है। मैं अगले सप्ताह ही पापा को लेकर वहाँ आना चाहती हूँ।'

'आ जाओ निर्मला, मुझे फ़ोन ज़रूर कर देना।'

निर्मला आ गई। वीरेश उससे मिलने आया। कल से ही निर्मला अपने नए जॉब पर जाने लगेगी। निर्मला के पिता ने डूबती आँखों से वीरेश को देखा। वे धीरे-धीरे बोल रहे हैं–'वीरेश, मैं अब अधिक दिन तक नहीं जी सकूँगा। बस निर्मला की फ़िक्र है।'

'आप कोई फ़िक्र न करें। आप ठीक हो जाएँगे।'

'नहीं, वीरेश मेरा वक़्त आ गया है।'

'आप फ़िक्र न करें। मैं निर्मला को सँभाल लूँगा'

'निर्मला बहुत खुद्दार लड़की है, वीरेश। हमने विस्थापन का दर्द भोगा है। मेरा घर, पैसा और संपत्ति सब कुछ आतंकवादियों ने ध्वस्त कर दिया। हम लोग किस तरह अपने ही देश से भागकर अपने ही देश के दूसरे भाग में आए, हमारी सरकार कुछ नहीं कर सकी। असम में बाहर के लोग आकर आराम से पाँव जमा रहे हैं और दिल्ली में कश्मीर से आकर लोग दर-दर भटक रहे हैं। यही हमारी सरकार का सेक्युलरिज़्म है।' यह कहते हुए वे तमतमा उठे हैं।

क्या करें पापा। जिस मज़हबी आधार पर हमारा देश बँटा, अब भी उस आधार को बनाकर रखा जा रहा है। उसे अब मजबूत भी किया जा रहा है। पाक से अल्पसंख्यक लगातार अब भी भारत आ रहे हैं, पर अफ़सोस है, कश्मीर तो भारत में ही है, वहाँ यह सब क्यों हा रहा है।'

इस वक़्त निर्मला उस कमरे में नहीं है। वह चाय का इंतज़ाम करने पड़ोस में गई है। वीरेश ने देखा निर्मला आ रही है। पापा ने कहा–'बेटी, वीरेश पर भरोसा करना। मेरा वक़्त अब ख़त्म हो रहा है।'

'इस तरह मत कहो पापा, आपके सिवा मेरा और कोई नहीं है। आपको कुछ नहीं होगा। आपको छोड़कर मैं कहीं नहीं जाऊँगी।'

'बेटी, मैं ही तुम्हें छोड़कर जा रहा हूँ। पापा की आँखों में आँसू थे। वीरेश ने पापा का हाथ पकड़कर उन्हें आश्वस्त किया था। अचानक उसके मुख से निकल गया–'पापा, मैं अभी भी अकेला हूँ। मैं निर्मला से शादी करना चाहता हूँ। पता नहीं निर्मला इसे मंजूर करेगी या नहीं।'

अचानक पापा के चेहरे पर चमक आ गई थी। उन्होंने निर्मला से कहा, 'बेटी तुम वीरेश से शादी कर लेना। मुझे आश्वासन दो। मैं नहीं चाहता, तुम और अधिक इस विस्थापन का दर्द सहो।'

'जैसा आप कहेंगे–मैं कर लूँगी पापा। आप कहीं नहीं जाएँगे पापा। यू विल नाट लीव मी अलोन।'

निर्मला ने नया जॉब ज्वॉइन कर लिया था। पापा की हालत दिनोंदिन बिगड़ रही थी।

वीरेश अब रोज़ एक बार उनसे मिलता था। पापा को अस्पताल में भर्ती कराया गया, पर उन्हें बचाया नहीं जा सका।

निर्मला की आँखों में आँसू थे। वह बहुत सहमी दिख रही थी। वीरेश ने कहा–'अपना हाथ मुझे दो निर्मला।'

निर्मला ने हाथ आगे बढ़ा दिया था। वीरेश ने उसे रिंग पहना दी थी।

'मुझे भी रिंग पहनाओ निर्मला।' उसने रिंग उसे दी थी।

निर्मला ने उदास आँखों से देखा और उसे रिंग पहना दी। उसके उदास चेहरे पर दर्द और खुशी एक साथ झलक रहे थे।

अचानक उसे लगा, ज़िंदगी रुकती नहीं है। चलती रहती है। उसके पापा भी यही चाहते थे। निर्मला को लगा वह विस्थापन के दर्द से बाहर निकल आई है। उसने वीरेश के कंधे पर अपना सर रख दिया था।

206, **बालाजी अपार्टमेंट्स,**
14/4 **स्नेहलता गंज**
इंदौर 452003 **(म०प्र०)**
दूरभाष : 0731-2537430, मो० 09302104498

पुस्तक समीक्षा

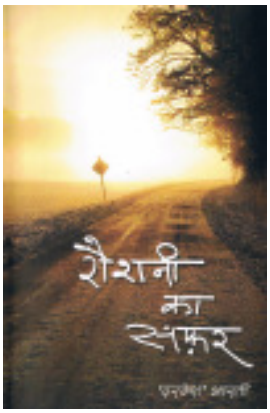

रौशनी का बेशकीमती सफ़र

डॉ॰ दरवेश भारती नाम पढ़ते ही एक सुविज्ञ ग़ज़ल-मर्मज्ञ और छंदशास्त्री के साथ ही, एक कुशल और निरपेक्ष संपादक की छवि स्वाभाविक रूप से मस्तिष्क-पटल पर उभरती है। अब ग़ज़ल के परिचय में या ग़ज़ल की सर्वप्रियता के बारे में कुछ भी कहना अथवा लिखना बेमानी है, क्योंकि भाषायी द्वंद्व को जीतते हुए ग़ज़ल हर क्षेत्र, हर वर्ग और हर कहन में अपना रुतबा हासिल करती जा रही है। ग़ज़ल को छापने से परहेज करने वाली कतिपय पत्रिकाएँ भी इधर ग़ज़ल के क़द के आगे झुकी हैं, तो ग़ज़ल के नाम पर नाक-भौं सिकोड़ने वाले वरिष्ठ और गरिष्ठ कविवृंद भी ग़ज़ल के दुरूह रणक्षेत्र में दो-दो हाथ करने पर उतारू हुए हैं (यह बात दीग़र है कि घोषित पूर्वाग्रहों के चलते उनकी लिखी ग़ज़लें अभी मंज़रे-आम पर नहीं आई हैं।) यह सब ग़ज़ल की सर्वग्राह्यता का ही प्रतीक है।

हाँ, तो बात शुरू की थी लब्ध-प्रतिष्ठ ग़ज़लगो डॉ॰ दरवेश भारतीजी के बहाने से, जिनकी अमूल्य पत्रिका 'ग़ज़ल के बहाने' इस मखमली राह में बिछे कंकड़-पत्थर और करील बटोरने में तमाम नए-पुराने ग़ज़ल-प्रेमियों को अर्से से 'टॉर्च' दिखा रही है। उन्हीं डॉ॰ दरवेश भारती की 75वीं वर्षगाँठ पर उनकी 75 नायाब ग़ज़लों का संकलन 'रौशनी का सफ़र' नाम से प्रकाशित होकर सुधी पाठकों के हाथों में आया है, ऐसा सफ़र जिसके लिए 'दरवेश' जी कहते हैं-

पाँव ठहरें ख़्याल चलते रहें
एक ऐसा भी तो सफ़र रखिए।

एक सुदीर्घ और सार्थक सफ़र तय करते हुए डॉ॰ दरवेश भारती ने अपनी तमाम ग़ज़लों में ग़ज़ल के छांदिक अनुशासन और कहन के मौलिक स्वरूप को पूरी प्रतिबद्धता से क़ायम रखा है। कथ्य के साथ छंद का निर्वाह ही डॉ॰ हरिवंश अनेजा को 'दरवेश भारती' बनाता है। उनकी संपादकीय दृष्टि आजकल की बहुत-सी ग़ज़लों में यह देखती है-

कथ्य तो है भरपूर, मगर
छंदों का भूगोल गया।

सही कहें तो काव्य की तमाम दूसरी लोकप्रिय विधाओं के बाद आज का युग ग़ज़ल की बादशाहत का युग है-

चौपाई, दोहा, कुंडली छाये रहे बहुत
'दरवेश' अब कलाम में तेवर ग़ज़ल के देख।

ग़ज़ल के सही तेवर डॉ॰ दरवेश भारती की पूरी किताब में अपने बेहतरीन लबो-लहज़े और सादगी के साथ उभरकर आए हैं। डॉ॰ दरवेश भारती अपनी ग़ज़लों में ज़ुबान का नया मुहावरा-सा गढ़ते हुए लगते हैं, उनके व्यंग्य चोट नहीं करते, बल्कि सहलाते हुए धीरे से भौचक्का कर देते हैं। ग़ज़ल के साथ बहुत से विवाद जुड़े किंतु फिर भी ग़ज़ल निर्विवाद अपना सफ़र तय करती रही। भाषा कोई भी हो, माहौल और हालात कैसे भी हों, ग़ज़ल ने पूरे औदार्य से ख़ुद में आत्मसात किया, बशर्ते कि उसका मूल स्वरूप, उसका अरेबिक पिंगल उससे ध्वस्त न होता हो-

इन विवादों से क्या हुआ हासिल
क्यों फटे दूध को बिलो बैठे।
हम भी कितने अजब हैं, सौदागर
सूद तो सूद, मूल खो बैठे।
चढ़ते सूरज से दोस्ती क्या की
अपने साये से हाथ धो बैठे।

डॉ॰ दरवेश भारती ने अपनी 75 ग़ज़लों में ग़ज़ल की 30 बहरों का बख़ूबी इस्तेमाल किया है। सराहनीय तथ्य है कि ऐसी बहुत-सी बहरों में डॉ॰ दरवेश भारती ने ग़ज़लें कही हैं, जो कि दुरूह मानी जाने के कारण अधिक प्रचलन में नहीं हैं। हालाँकि, वे अपनी पत्रिका 'ग़ज़ल के बहाने' में अरूज़ और बहरों के सरलीकृत प्रयोग एवं शुद्धता की बाबत क़दम-दर-क़दम समझाते रहे हैं। समान रुक्न वाली मूल बहरों के आसान नामकरण भी दरवेशजी ने अँग्रेज़ी के अक्षरों A,B,C से किए हैं ताकि समझने में आसानी हों। किंतु मेरा मानना है कि मौलिक स्वरूप को बिना छेड़े, सर्वग्राह्य बनाने के लिए ग़ज़ल के स्थापित विद्वानों में व्यापक सहमति के बाद, ग़ज़ल के व्याकरण का सरलीकृत एवं सर्वमान्य स्वरूप अभी भी प्रतीक्षित है। इस दिशा में डॉ॰ दरवेश भारती और उन जैसे दूसरे विद्वान सामूहिक प्रयास करें तो नई पीढ़ी

को ग़ज़ल का ककहरा सीखने में पर्याप्त सहायता होगी। बहरहाल, संग्रह में सर्वाधिक 13 ग़ज़लें F-11 (मफ्ऊल फ़ाइलात मफ़ाईल फ़ाइलुन) बहर में कही गई हैं।

डॉ॰ दरवेश भारती के भीतर का ग़ज़लकार परंपरागत मूल्यों के विघटन से जहाँ एक ओर भीतर तक आहत है, वहीं खोखली आधुनिक मान्यताओं और विकास के थोथे दावे भी उन्हें कहने पर विवश करते हैं–

पीपल न ताल है, न है चौपाल ही कहीं
पुरखों की एक-एक निशानी किधर गई।
हालात देख आज के उभरा है ये सवाल
तुलसी, कबीर, सूर की बानी किधर गई।

दूसरी ओर–

ये इमारतों के बीच खोलियों का सिलसिला
ऐसे बज रही है दुंदुभी समाजवाद की।
बोलता नहीं कोई सबके मुँह पे ताला है
जर्जरी व्यवस्था ने प्रश्न वो उछाला है।

आज के युग में घरों में क्या, लोगों के दिलो-दिमाग़ में बाज़ारवाद ने अपनी सुगम पैठ बना ली है, तभी तो संवेदनाओं की फ़सल सूख रही है और हर ओर से छल, फ़रेब, धोखा खाकर भी आज का इंसान ख़ुश होने का भ्रम पाल रहा है–

घरों तक आ गया बाज़ारवाद यूँ यारो
कि लोग अपने ही लोगों से जा रहे हैं छले।
मान, मर्यादा, ख़ुदी को बेचकर
हैं प्रफुल्लित हम सभी को बेचकर।

नि:संदेह, आज के 'कैलकुलेटिव' युग में जीते हुए भी डॉ॰ दरवेश भारती बेहद नेकदिल, साफ़गो और सादापसंद ख़ालिस इंसान हैं, तभी तो कहते हैं–

ओढ़कर चिंता न घर लौटा करो
वर्ना बन जाओगे इक अख़बार तुम।

दरवेशजी अनुभव और शालीनता के ऐसे दरख़्त हैं, जिन्हें धूप सहकर छाँव देने का अद्भुत हुनर भी बख़ूबी आता है और उम्र के इस परवान पर जीवन का संतुलन कैसे साधा जाए, ये गुण भी। तभी तो वे कहते हैं–

जो छाँव औरों को दे, ख़ुद कड़कती धूप सहे
किसी, किसी को ख़ुदा ये कमाल देता है।

और–

संतुलन ज़िंदगी में है लाज़िम
ये जो बिगड़ा तो फिर बना न कभी।

डॉ॰ दरवेश भारती जैसा 'समय का कवि' टूटती आस्थाओं, दरकते विश्वासों, गिरते मूल्यों और पाषाणिक भौतिकवाद के इस युग में भी चुटकी-भर संवेदनाओं की नमी अपने अंतस में समेटे हुए है, तभी तो वे एक शेर से पूरा परिदृश्य चित्रित कर देते हैं–

फ़लक पर कबूतर दिखे जब कभी
बहुत याद आईं तेरी चिट्ठियाँ।

डॉ॰ दरवेश भारती ग़ज़ल की दुनिया का एक स्थापित और आधिकारिक नाम है, इसलिए यह विश्वास करना होगा कि ग़ज़लों की 'नई रोशनी का यह सफ़र' नए मकाम तय करते हुए मुझ जैसे न जाने कितने पथिकों को सही रास्ता दिखाएगा–

है दुआ उसी के लिए यही
ये सफ़र हो रौशनी का सफ़र।

रौशनी का सफ़र (ग़ज़ल-संग्रह)
प्रकाशक : कादंबरी प्रकाशन, जवाहर नगर दिल्ली 110007, **संस्करण** : 2013, **मूल्य** : 150.00

समीक्षक : मनोज अबोध
सरस्वती मार्ग, नईबस्ती, बिजनौर 246701
मो॰ 9319317089/ 09910889554

सिनेमा, साहित्य और संस्कृति

नवलकिशोर शर्मा

मूल्य : सजिल्द 150 रुपए

हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर

हिन्दी साहित्य निकेतन

16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ॰प्र॰)

फोन : 01342-263232, 07838090732

ई-मेल :
giriraj3100@gmail.com
giriraj@hindisahityaniketan.com
वेबसाइट :
www.hindisahityaniketan.com

महत्त्वपूर्ण कोश एवं संदर्भ ग्रंथ

निश्तर ख़ानक़ाही एवं डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल
ग़ज़ल और उसका व्याकरण 150.00

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल एवं डॉ॰ मीना अग्रवाल
हिंदी साहित्यकार संदर्भ कोश : भाग-1 495.00
हिंदी साहित्यकार संदर्भ कोश : भाग-2 700.00
हिंदी साहित्यकार संदर्भ कोश : भाग-3 1100.00
हिंदी शोध के नए प्रतिमान 800.00
हिंदी शोध : नई दृष्टि 800.00
हिंदी तुलनात्मक शोधसंदर्भ 995.00
शोधसंदर्भ-भाग-1 500.00
शोधसंदर्भ-भाग-2 550.00
शोधसंदर्भ-भाग-3 525.00
शोधसंदर्भ-भाग-4 595.00
शोधसंदर्भ-भाग-5 895.00
हिंदी तुकांत कोश 300.00

समीक्षा एवं समालोचना

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल
सवाल साहित्य के 200.00

डॉ॰ चंद्रकात मिसाल
हिंदी सिनेमा और दांपत्य संबंध 500.00
सिनेमा और साहित्य का अंत:संबंध 200.00

नवलकिशोर शर्मा
सिनेमा, साहित्य और संस्कृति 150.00

धर्मेन्द्र उपाध्याय
आमिर खान : हिंदी सिनेमा के सेवक 300.00

डॉ॰ अंजू भटनागर
डॉ॰ कुँअर बेचैन के साहित्य में प्रतीक विधान 500.00

डॉ॰ योगेश गोकुल पाटिल
अमरकांत का कथासाहित्य 400.00

डॉ॰ अनुभूति
नारी समस्याओं का समाजशस्त्रीय अध्ययन 450.00

डॉ॰ सुषमा सिंह
राजस्थानी चित्रशैली में आखेट दृश्य 250.00
भोपाल के संग्रहालयों की चित्रकला 250.00

डॉ॰ ज्योति सिंह
मृदुला गर्ग कृत अनित्य : इतिहास और आख्यान का संबंध 150.00
मृदुला गर्ग और नारी-अस्मिता का प्रश्न 300.00

डॉ॰ मिथिलेश माहेश्वरी
काका हाथरसी : एक समीक्षा-यात्रा 300.00

डॉ॰ मनोज कुमार
सांप्रदायिकता और हिंदी कथासाहित्य 250.00

डॉ॰ दीपा के॰
अपनी कविताओं में अशोक चक्रधर 250.00

डॉ॰ मीना अग्रवाल
आधुनिक हिंदी गीतिकाव्य में संगीत (पुरस्कृत) 450.00

डॉ॰ हरीशकुमार सिंह
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल : व्यक्ति और साहित्य 350.00

डॉ॰ अनिलकुमार शर्मा
साठोत्तरी हिंदी-ग़ज़ल : डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल का योगदान 350.00

डॉ॰ वी॰ जयलक्ष्मी
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल का व्यंग्य-साहित्य : कथ्य एवं भाषा 450.00
डॉ॰ पूर्णचंद शर्मा
लोकरंगमंच के आयाम 200.00
डॉ॰ शंकर क्षेम
एक साक्षात्कार : पं॰ अमृतलाल नागर के साथ 150.00
अनिरुद्ध सिन्हा
ग़ज़ल : सौंदर्य और यथार्थ 150.00
डॉ॰ ज्योति व्यास
समय के हस्ताक्षर (हिंदी के आधुनिक कवि) 150.00
डॉ॰ लालबहादुर रावल
कालिदास के साहित्य में भौगोलिक तत्त्व 300.00
डॉ॰ अशोककुमार
जनपद बिजनौर के आधुनिककालीन साहित्यकार 350.00
डॉ॰ ओमदत्त आर्य
बिजनौर क्षेत्र की ग्रामोद्योग-संबंधी शब्दावली का अध्ययन 500.00
डॉ॰ मिथिलेश दीक्षित
आस्थावाद एवं अन्य निबंध 300.00
साहित्य और संस्कृति 300.00
डॉ॰ आशा रावत
हास्य-निबंध : स्वतंत्रता के पश्चात् 350.00
डॉ॰ प्रेम जनमेजय
आज़ादी के बाद का हिंदी गद्य व्यंग्य 500.00
विनोदचंद्र पांडेय
हिंदी बालकाव्य के विविध पक्ष 300.00
डॉ॰ स्वाति शर्मा
हिंदी बालसाहित्य : डॉ॰ सुरेंद्र विक्रम का योगदान 450.00
डॉ॰ पी॰आर॰ वासुदेवन
भीष्म साहनी का कथासाहित्य : सांप्रदायिक सद्भाव 300.00
अविनाश वाचस्पति/रवींद्र प्रभात
हिंदी ब्लॉगिंग : अभिव्यक्ति की नई क्रांति 495.00
रवींद्र प्रभात
हिंदी ब्लॉगिंग का इतिहास 300.00
डॉ॰ विजय इंदु
सूरदास का सौंदर्यचित्रण 250.00

डॉ॰ मीनल रश्मि
साठोत्तरी हिंदी रेखाचित्र : शैलीवैज्ञानिक अध्ययन 495.00
डॉ॰ आदित्य प्रचंडिया
डॉ॰ महेंद्रसागर प्रचंडिया समग्र (गीत खंड) 700.00
डॉ॰ महेंद्रसागर प्रचंडिया समग्र (दोहा खंड) 700.00
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल, डॉ॰ मीना अग्रवाल
वादविवाद प्रतियोगिता : पक्ष और विपक्ष 200.00
डॉ॰ शुचि गुप्ता
फिजी में प्रवासी भारतीय 300.00
डॉ॰ शिवशंकर लधवे
मुक्तिबोध का रचना-संसार 200.00

हास्य-व्यंग्य

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल
मेरी हास्य-व्यंग्य कविताएँ 150.00
मेरे इक्यावन व्यंग्य 300.00
चुनी हुई हास्य कविताएँ 250.00
बाबू झोलानाथ 60.00
राजनीति में गिरगिटवाद 100.00
आदमी और कुत्ते की नाक 150.00
आओ भ्रष्टाचार करें 200.00
गोपाल चतुर्वेदी
दूध का धुला लोकतंत्र 150.00
गिरीश पंकज
आधुनिक बैताल कथाएँ 200.00
महेशचंद्र द्विवेदी
भज्जी का जूता 150.00
क्लियर फंडा 120.00
प्रिय-अप्रिय प्रशासकीय प्रसंग 170.00
पं॰ सूर्यनारायण व्यास, सं॰ राजशेखर व्यास
वसीयतनामा 150.00
नो टेंशन/ डॉ॰ सुरेश अवस्थी 170.00
काका हाथरसी
काका की विशिष्ट रचनाएँ 300.00
काका के व्यंग्य-बाण 300.00
कक्के के छक्के 200.00

लूटनीति मंथन करी 200.00
खिलखिलाहट 200.00
डॉ॰ आशा रावत
पैसे कहाँ से दें 200.00
चाहिए एक और भगतसिंह 100.00
महेश राजा
नमस्कार प्रजातंत्र 150.00
अशोक चक्रधर
ए जी सुनिए 100.00
इसलिए बौड़म जी इसलिए 100.00
चुटपुटकुले 60.00
तमाशा 60.00
रंग जमा लो 65.00
सो तो है 60.00
हँसो और मर जाओ 60.00
डॉ॰ बलजीत सिंह
नमस्ते जी 150.00
अब हँसने की बारी है 200.00
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल
1995 **की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ** 65.00
1996 **की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ** 100.00
1997 **की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ** 100.00
1998 **की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ** 100.00
1999 **की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ** 120.00
2002 **की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ** 150.00
2003 **की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ** 150.00
2004 **की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ** 170.00
पिछले दशक की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य कहानियाँ 100.00
पिछले दशक की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य कविताएँ 200.00
पिछले दशक के श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य एकांकी 100.00
डॉ॰ शिव शर्मा
शिवशर्मा के चुने हुए व्यंग्य 50.00
बजरंगा (व्यंग्य-उपन्यास) 150.00
अपने-अपने भस्मासुर 150.00
दामोदरदत्त दीक्षित
प्रतिनिधि व्यंग्य 100.00

हास्य-व्यंग्य : मधुप पांडेय के संग/ मधुप पांडेय 200.00
धमकीबाज़ी के युग में/निश्तर ख़ानक़ाही 60.00
ला ख़र्चा निकाल/गजेंद्र तिवारी 200.00
जलनेवाले जला करें/गजेंद्र तिवारी 60.00
कवयित्री सम्मेलन/ सुरेंद्रमोहन मिश्र 100.00
पेट में दाढ़ियाँ हैं/सूर्यकुमार पांडेय 100.00
डॉ॰ हरीशकुमार सिंह
ये है इंडिया 120.00
आँखों देखा हाल 150.00
सच का सामना 150.00
लिफ़्ट करा दे 200.00
देवेंद्र के कार्टून/देवेंद्र शर्मा 80.00
कार्टून कौतुक/देवेंद्र शर्मा 120.00
लिफ़ाफ़े का अर्थशास्त्र/डॉ॰ पिलकेंद्र अरोरा 120.00
अजगर करे न चाकरी/बाबूसिंह चौहान 150.00

कहानी

डॉ॰ आशा रावत
एक सपना मेरा भी था 200.00
विजयकुमार
एक थी माया 200.00
सुरेशचंद्र शुक्ल
सरहदों के पार 200.00
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल
जिज्ञासा और अन्य कहानियाँ 200.00
छोटे-छोटे सुख 200.00
कथा जारी है/बाबूसिंह चौहान 150.00
इक्कीस कहानियाँ/ सत्यराज 100.00
डॉ॰ मीना अग्रवाल
अंदर धूप बाहर धूप (नारी-मन की कहानियाँ) 150.00
कुत्तेवाले पापा 150.00
डॉ॰ दिनेशचंद्र बलूनी
उत्तराखंड की लोकगाथाएँ 200.00
महेशचंद्र द्विवेदी
एक बौना मानव 100.00
लव जिहाद 200.00
इमराना हाज़िर हो 150.00

हैं आस्माँ कई और भी/ नीरजा द्विवेदी 200.00
कौन कितना निकट/रेणु राजवंशी गुप्ता 120.00
लघु कथाएँ/डॉ॰ हरिशरण वर्मा 150.00
डॉ॰ सुधा ओम ढींगरा
कमरा नं॰ 103 150.00
डॉ॰ इला प्रसाद
कहानियाँ अमरीका से 150.00
डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका (सं॰)
प्रेमचंद की कालजयी कहानियाँ 150.00
सुकेश साहनी, रामेश्वर काम्बोज हिमांशु (सं॰)
लघुकथाएँ जीवनमूल्यों की 150.00

उपन्यास

डॉ॰ राजेन्द्र मिश्र
इतिहास की आवाज़ 450.00
श्रीमती सुषमा अग्रवाल
अनोखा उपहार 200.00
आसरा 100.00
तीन बीघा ज़मीन 200.00
मन के जीते जीत 200.00
नीरजा द्विवेदी
कालचक्र से परे 200.00
महेशचंद्र द्विवेदी
भीगे पंख 200.00
मानिला की योगिनी 200.00
डॉ॰ तारादत्त निर्विरोध
और लहरें उफनती रहीं 200.00
डॉ॰ शिव शर्मा
बजरंगा (व्यंग्य-उपन्यास) 150.00
डॉ॰ मोहन गुप्त
अराज-राज 200.00
सुराज-राज 350.00
डॉ॰ आशा रावत
एक गुमनाम फौजी की डायरी 150.00
एक चेहरे की कहानी 150.00
गुरुदक्षिणा (व्यंग्य-उपन्यास) 100.00
प्रेमसागर तिवारी
एक फ़रिश्ता ऐसा देखा 250.00

एकांकी-नाटक

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल
मंचीय हास्य-व्यंग्य एकांकी 200.00
मंचीय सामाजिक एकांकी 200.00
बच्चों के हास्य नाटक 200.00
बच्चों के रोचक नाटक 200.00
बच्चों के शिक्षाप्रद नाटक 200.00
बच्चों के अनुपम नाटक 200.00
बच्चों के उत्तम नाटक 200.00
भारतीय गौरव के बाल नाटक 200.00
प्रेमचंद की कहानियों पर आधारित नाटक 300.00
ग्यारह नुक्कड़ नाटक 200.00
प्रकाश मनु
बच्चों के अनोखे नाटक 200.00
हास्य-विनोद के नाटक 200.00
संसार : एक नाट्यशाला/बाबूसिंह चौहान 150.00
ग्यारह एकांकी/डॉ॰ हरिशरण वर्मा 200.00
दमन/रामाश्रय दीक्षित 100.00
स्वप्न पुरुष/उर्मिला अग्रवाल 150.00
अफलातून की अकादमी/डॉ॰ शिव शर्मा 150.00

ललित निबंध एवं रेखाचित्र

कैसे-कैसे लोग मिले/निश्तर ख़ानक़ाही 125.00
यादों का मधुबन/कृष्ण राघव 150.00
समय के चाक पर/डॉ॰ लालबहादुर रावल 125.00
समय एक नाटक/डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल 200.00
दर्पण झूठ बोलता है/बाबूसिंह चौहान 60.00
मकड़जाल में आदमी/बाबूसिंह चौहान 80.00
उफनती नदियों के सामने/बाबूसिंह चौहान 100.00
इन दिनों समर में/डॉ॰ कृष्णकुमार रत्तू 250.00
अनुभव के पंख/चंद्रवीरसिंह गहलौत 250.00
डॉ॰ बालशौरि रेड्डी
मेरे साक्षात्कार 250.00
डॉ॰ बलजीत सिंह
आधी हकीकत आधा फ़साना 200.00
डॉ॰ ओमदत्त आर्य

फूलों की महक 200.00
डॉ॰ गंगाप्रसाद गुप्त 'बरसैंया'
संवाद : साहित्यकारों से 200.00
एक फ़रिश्ता ऐसा देखा/प्रेमसागर तिवारी 250.00

गीत-ग़ज़ल

निश्तर ख़ानक़ाही
निश्तर ख़ानक़ाही समग्र (प्रकाशनाधीन) 500.00
मोम की बैसाखियाँ (ग़ज़ल-संग्रह) 50.00
ग़ज़ल मैंने छेड़ी (ग़ज़ल-संग्रह) 80.00
ग़ज़लों के शहर में (ग़ज़ल-संग्रह) 200.00
मेरे लहू की आग (ग़ज़ल-संग्रह) 150.00
डॉ॰ कुँअर बेचैन
कोई आवाज़ देता है 150.00
दिन दिवंगत हुए 150.00
कुँअर बेचैन के नवगीत 200.00
कुँअर बेचैन के प्रेमगीत 150.00
पर्स पर तितली (हाइकु) 200.00
रमेश पोखरियाल 'निशंक'
मातृभूमि के लिए 200.00
संघर्ष जारी है 170.00
जीवन-पथ में 150.00
देश हम जलने न देंगे 150.00
तुम भी मेरे साथ चलो 150.00
लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'
झरनों का तराना है 200.00
राजेन्द्र मिश्र
असाबिया 200.00
समय के भूगोल में 200.00
आठवाँ राग 200.00
हवाएँ ख़ामोश हैं 200.00
रामेश्वरप्रसाद
शमा हर रंग में जलती है 150.00
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल
अक्षर हूँ मैं (कविताएँ) 150.00
सन्नाटे में गूँज (ग़ज़ल-संग्रह) 200.00
भीतर शोर बहुत है (ग़ज़ल-संग्रह) 200.00
मौसम बदल गया कितना (ग़ज़ल-संग्रह) 100.00
रोशनी बनकर जिओ (ग़ज़ल-संग्रह) 150.00
शिकायत न करो तुम (ग़ज़ल-संग्रह) 150.00
आदमी है कहाँ (ग़ज़ल-संग्रह) 200.00
प्रतिनिधि ग़ज़लें (ग़ज़ल-संग्रह) 200.00
गीतिका गोयल
मान भी जा छुटकी (कविताएँ) 150.00
रामगोपाल भारतीय
आदमी के हक़ में (ग़ज़ल-संग्रह) 100.00
रमेश कौशिक
यहाँ तक वहाँ से (कविताएँ) 200.00
हास्य नहीं व्यंग्य (कविताएँ) 150.00
आर्यभूषण गर्ग
गांधारी का सच (खंडकाव्य) 200.00
डॉ॰ आकुल
राधेय (खंडकाव्य) 120.00
असित चंद्र : अवदात चंद्रिका (काव्य-नाटक) 120.00
जिंदगी गाती तो है/(ग़ज़ल-संग्रह) 120.00
किशनस्वरूप
आसमान मेरा भी है (ग़ज़ल-संग्रह) 100.00
बूँद-बूँद सागर मैं (ग़ज़ल-संग्रह) 100.00
कर्नल तिलकराज
आँचल-आँचल खुशबू (ग़ज़ल-संग्रह) 100.00
ज़ख़्म खिलने को हैं (ग़ज़ल-संग्रह) 100.00
अग्निसुता/राजेंद्र शर्मा 150.00
सीतायनी/डॉ॰ शंकर क्षेम 150.00
शचींद्र भटनागर
हिरना लौट चलें (गीत-संग्रह) 150.00
तिराहे पर (ग़ज़ल-संग्रह) 150.00
ढाई आखर प्रेम के (गीत-संग्रह) 200.00
अखंडित अस्मिता (मुक्तक) 200.00
मनोज अबोध
गुलमुहर की छाँव में (ग़ज़ल-संग्रह) 100.00
मेरे भीतर महक रहा है (ग़ज़ल-संग्रह) 150.00
तारा प्रकाश
तारा प्रकाश समग्र 500.00
उजियारा आशाओं का 150.00

बुलंदी इरादों की 150.00
चलने से मंज़िल मिलती है 200.00
इंद्रधनुष 200.00
संवेदनाओं के रंग 200.00
अश्विनीकुमार 'विष्णु'
सुरों के ख़त 100.00
सुनहरे मंत्र का जादू 100.00
सुनते हुए ऋतुगीत 150.00
सुबह की अंगूठी 150.00
डॉ॰ मीना अग्रवाल
सफ़र में साथ-साथ (मुक्तक-संग्रह) 150.00
जो सच कहे (हाइकु-संग्रह) 150.00
यादें बोलती हैं (कविताएँ) 200.00
एक मुट्ठी धूप/नीरजा सिंह 100.00
डॉ॰ कमल मुसद्दी
कटे हाथों के हस्ताक्षर 150.00
डॉ॰ बलजीत सिंह
फ़ासले मिट जाएँगे (ग़ज़ल-संग्रह) 150.00
शब्द-शब्द संदेश (दोहे) 150.00
जीवन है मुस्कान (दोहे) 150.00
भीतर का संगीत (दोहे) 200.00
सुख के बिरवे रोप (दोहे) 200.00
इंद्रधनुष के रंग (दोहे) 200.00
प्यार के गुलाल से (हाइकु) 200.00
हारना हिम्मत नहीं (मुक्तक) 200.00
डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'
बहती नदी हो जाइए (ग़ज़ल-संग्रह) 150.00
अँधियारों से लड़ना सीखें (ग़ज़ल-संग्रह) 200.00
जीवन-अमृत : पर्यावरण चेतना (दोहा-संग्रह) 200.00
अक्षर-अक्षर हो अमर (दोहा-संग्रह) 200.00
वैदुष्यमणि विद्योत्तमा (खंडकाव्य) 200.00
महेशचंद्र द्विवेदी
अनजाने आकाश में 170.00
सत्येंद्र गुप्ता
बातें कुछ अनकही 200.00
मैंने देखा है 200.00
हौसला तो है 200.00
ज़िंदगी रुकती नहीं 200.00
जज़्बात की धूप/धूप धौलपुरी 250.00
नवलकिशोर शर्मा
आड़ी-तिरछी यादों-सा कुछ 180.00
जब चाँद डूब रहा था 200.00
एड्स शतक/पूरणसिंह सैनी 150.00
डॉ॰ ओमदत्त आर्य
खोजें जीवन सत्य (दोहे) 150.00
अपनी एक लकीर (दोहे) 200.00
सलेकचंद संगल
राष्ट्र-शक्ति 150.00
माँ तुझे प्रणाम 150.00
लहरों के विरुद्ध/डॉ॰ रामप्रकाश 200.00
हर वृक्ष महाबोधि नहीं होता/महेंद्र कुमार 200.00
पीड़ा का राजमहल/डॉ॰ उर्मिला अग्रवाल 200.00
मैं एक समुद्र/डॉ॰ तारादत्त निर्विरोध 200.00
उड़ान जारी है/विनोद भृंग 200.00
हरिराम 'पथिक'
कहता कुछ मौन (हाइकु-संग्रह) 200.00
चंद्रवीरसिंह गहलौत 'बेदाग'
धनुषभंजक राम 200.00
एक कुल्हड़ चाय/स्वर्ण ज्योति 200.00
रामेश्वर वैष्णव
सूर्यनगर की चाँदनी (ग़ज़लें) 150.00
दामोदर खड़से
रात (रात पर कविताएँ) 150.00
डॉ॰ आदित्य प्रचंडिया
डॉ॰ महेंद्रसागर प्रचंडिया समग्र (गीत खंड) 700.00
डॉ॰ महेंद्रसागर प्रचंडिया समग्र (दोहा खंड) 700.00

आत्मकथा-संस्मरण-पत्र

मेरा जीवन : ए-वन/काका हाथरसी 100.00
आत्मसरोवर/ओम्प्रकाश अग्रवाल 125.00
निष्ठा के शिखर-बिंदु/नीरजा द्विवेदी 200.00
सफ़र साठ साल का/डॉ॰अजय जनमेजय (सं) 400.00
गीतिका गोयल, अनुभूति भटनागर (संपादक)

यादों की गुल्लक 300.00
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल (संपादक)
उत्तरोत्तर 500.00
धर्मेन्द्र उपाध्याय
आमिर ख़ान : हिंदी सिनेमा के सेवक 300.00

बाल-साहित्य

लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'
गधा बत्तीसी 200.00
शंभूनाथ तिवारी
धरती पर चाँद (पुरस्कृत) 150.00
डॉ॰ बलजीतसिंह
हम बगिया के फूल (बालगीत) 150.00
आओ गीत सुनाओ गीत 150.00
छुट्टी के दिन बड़े सुहाने 200.00
दिन बचपन के (बालगीत) 200.00
विनोद भृंग
जादूगर बादल (बालगीत) 150.00
बालकृष्ण गर्ग
आटे-बाटे दही चटाके (शिशुगीत) 150.00
गीतिका गोयल
चुनमुन की कहानियाँ (पुरस्कृत) 150.00
डॉ॰ सरला अग्रवाल
किशोर मन की कहानियाँ 150.00
डॉ॰ तारादत्त निर्विरोध
चलो आकाश को छू लें 200.00
डॉ॰ सरोजनी कुलश्रेष्ठ
काग़ज़ की नाव 150.00
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल
मानव-विकास की कहानी 200.00
पार्टी गेम्स/चाँदनी कक्कड़ 125.00

समाजोन्मुख साहित्य

डॉ॰ सरिता शाह
उत्तराखंड में आध्यात्मिक पर्यटन 200.00
निश्तर ख़ानक़ाही, डॉ॰ गिरिराजशरण, डॉ॰ मीना अग्रवाल
पर्यावरण : दशा और दिशा (पुरस्कृत) 300.00
नारी : कल और आज 200.00
निश्तर ख़ानक़ाही, डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल
विश्व आतंकवाद : क्यों और कैसे 125.00
हिंसा : कैसी-कैसी 200.00
दंगे : क्यों और कैसे (पुरस्कृत) 100.00
रमेशचंद्र दीक्षित, निश्तर ख़ानक़ाही, डॉ॰ गिरिराजशरण
मानवाधिकार : दशा और दिशा (पुरस्कृत) 300.00
डॉ॰ गिरिराज शाह
अपराध-अपराधी : अन्वेषण एवं अभियोजन 200.00
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल
गुरु नानकदेव 200.00
अमृतवाणी 300.00
डॉ॰ मूलचन्द दालभ
वेद-वेदान्त दर्शन 300.00
प्रकृति : एक ज्ञेय तत्त्व 300.00
कन्हैया गीता/डॉ॰ मूलचन्द दालभ 900.00
डॉ॰ कमलकांत बुधकर
मैं हरिद्वार बोल रहा हूँ 395.00
डॉ॰ गोविंद शर्मा एवं रवि लंगर
टास्कफोर्स : हैल्थकेयर प्रोजेक्ट्स 450.00
मनोज भारद्वाज
सिद्धाश्रम का संन्यासी 300.00
डॉ॰ लालबहादुर रावल
समुद्री दैत्य सुनामी 300.00

शोध अंक

शोध अंक भाग-1 200.00
शोध अंक भाग-2 200.00
शोध अंक भाग-3 200.00
शोध अंक भाग-4 200.00
शोध अंक भाग-5 200.00
शोध अंक भाग-6 200.00
शोध अंक भाग-7 200.00
शोध अंक भाग-8 200.00
शोध अंक भाग-9 200.00
शोध अंक भाग-10 200.00
शोध अंक भाग-11 200.00
शोध अंक भाग-12 200.00
शोध अंक भाग-13 200.00
शोध अंक भाग-14 200.00
शोध अंक भाग-15 200.00
शोध अंक भाग-16 200.00
शोध अंक भाग-17 200.00
शोध अंक भाग-18 200.00
शोध अंक भाग-19 200.00
शोध अंक भाग-20 200.00
शोध अंक भाग-21 200.00
शोध अंक भाग-22 200.00
शोध अंक भाग-23 200.00
शोध अंक भाग-24 200.00